संस्थापित १८६७ ई.

ओ३म्

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १२८ ● : संयुक्तांक ३६ एवं ३७ ● ७ एवं १४ सितम्बर, २०२३ (गुरुवार) श्रावण कृष्णपक्ष अमावस्या सम्वत् २०८० ● दयानन्दाब्द १६६ वेद व मानव सृष्टि सम्वत्:१६६०८५३१२४

भारत शब्द का उदय और वास्तविक भावार्थ

-डॉ. डी.के. गर्ग

यह तो आप स्वीकार करते है कि भारत देश अतीत में सोने की चिड़िया और विश्व गुरु के नाम से जाना जाता रहा है। हमारे ऋषि मुनि विज्ञान , अध्यात्म , चिकित्सा और शिक्षा के क्षेत्र में विश्व गुरु रहे है। चाणक्य, आर्यभट्ट, शुश्रुत, चरक, धनवंतरी, अत्रि ऋषि, गौतम , विश्वामित्र आदि अनंत ऋषि हुए है जिनका लोहा विश्व आज भी मानता है ।

हमारे मूल ग्रंथ संस्कृत भाषा में ही है। संस्कृत हमारी देव भाषा है और अन्य सभी भारतीय भाषाएं भी संस्कृत भाषा का ही प्रत्यक्ष या अप्रत्क्षय रूप है । हमारे पुरातन ग्रंथ परमात्मा की वाणी चारो वेद भी संस्कृत में है। इसलिए हमारे नाम, शहरो के नाम, नदियों के नाम आदि भी संस्कृत भाषा से प्रभावित है। इससे यह भी पता लगता है कि हमारे पर्वतों, नदियों, नगरों आदि के नाम भी वेदों से लिये गये हैं।

उपरोक्त विशिष्ट विशेषताओं वाले देश को भारत नाम दिया गया। और यहाँ रहने वाले भारतीय।

ये एक सम्मान सूचक शब्द है। जिसके हम सभी हकदार है। इसी भूमि पर राम, कृष्ण, बुद्ध, दयानंद जैसे महापुरुष पैदा हुए।

भारत शब्द का भावार्थ :

जब भी कोई शब्द विशेष रुप से चर्चा में आता है तो उस शब्द का वास्तविक भावार्थ समझने के लिए मैं उस शब्द को पहले वेद में तलाश करके उसके विभिन्न भावार्थ का अध्ययन करता हूं।

चारो वेद में ढूंढने से मालुम हुआ कि भारत शब्द मूल रुप से वैदिक शब्द है। यह शब्द वेद में भी मिलता है। इसका अर्थ भी बहुत अच्छा है।

ये ध्यान रहे की वेद मंत्रो में 'भारत' शब्द द्वारा कोई भारत का इतिहास या भारत की कोई गाथा नहीं गाई गई है। क्योंकि वेदों में कोई इतिहास नहीं होता। परन्तु हमारे भारतीय शब्दों की महिमा क्या होती है, हमारे शब्द कितने अर्थ पूर्ण और भाव पूर्ण होते है उसका अनुभव आपको जरूर होगा।

आइए इसका भावार्थ समझते है।

'भासृ दीप्तौ' धातु से भारत शब्द बनता है अर्थात् प्रकाश या ज्ञान में रत रहने वाला 'भारत' कहलाता है।

हमारे गौरव और स्वाभिमान के प्रतीक 'भारत' शब्द को चारों वेदों में ढूंढने पर छः मन्त्रों में भारत शब्द मिलता है।

श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्ने द्युमन्तमा भर।
वसो पुरुस्पृहं रयिम्।।

- ऋग्वेद २/७/१

पदार्थ - हे (वसो) सुखों में वास कराने और (भारत) सब विद्या विषयों को धारण करनेवाले (यविष्ठ) अतीव युवावस्था युक्त (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान विद्वान् ! आप (श्रेष्ठम्) अत्यन्त कल्याण करनेवाली (द्युमन्तम्) बहुत प्रकाशयुक्त (पुरुस्पृहम्) बहुतों को चाहने योग्य (रयिम्) लक्ष्मी को (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये।

त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः।
अष्टापदीभिराहुतः।।

- ऋग्वेद २/७/५

पदार्थ - हे (भारत) सब विषयों को धारण करनेवाले (अग्ने) विद्वान् ! जो (वशाभिः) मनोहर गौओं से वा (उक्षाभिः) बैलों से वा (अष्टापदीभिः) जिनमें आठ सत्यासत्य के निर्णय करनेवाले चरण हैं। उन वाणियों से (आऽहुतः) बुलाये हुए आप (नः) हम लोगों के लिये सुख दिये हुए (असि) हैं।सो हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हैं।

य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम्। विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम्।।

- ऋग्वेद ३/५३/१२

पदार्थ - हे मनुष्यो ! (यः) जो (इमे) ये (उभे) दोनों (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी (ब्रह्म) धन वा ब्रह्माण्ड (इदम्) इस वर्तमान (भारतम्) वाणी के जानने वा धारण करनेवाले उस (जनम्) प्रसिद्ध मनुष्य आदि प्राणि स्वरूप की (रक्षति) रक्षा करता है जिस (इन्द्रम्) परमात्मा की

शेष पृष्ठ ४ पर....

वेदामृतम्

परि चिन्मर्तो द्रविणं ममन्याद्, ऋतस्य पथा नमसा विवासेत् ।
उत स्वेन क्रतुना संवदेत, श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृभ्यात ।।

ऋ.१०.३१.२

मनुष्य को चाहिए कि वह 'द्रविण' प्राप्त करे। 'द्रविण' बल का नाम है, क्योंकि बल के द्वारा ही हमें किसी वस्तु को पाने के लिए और किसी शत्रु से आत्मरक्षा करने के लिए उसकी ओर दौड़ते हैं। 'द्रविण' धन का भी नाम है, क्योंकि धन के प्रति सब दौड़ लगाते हैं। बल से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तीनों प्रकार का वल तथा धन से भौतिक एवं आध्यात्मिक उभयविध धन ग्राह्य है। अपने जीवन में इनका प्रत्येक मनुष्य संचय करे। मनुष्य का दूसरा कर्तव्य है कि वह परमात्मा की पूजा करे संसार के सभी आस्तिक जन अपने मन में परमात्मा का कोई रूप कल्पित कर लेते हैं तथा उसकी पूजा का भी अपनी रुचि के अनुकूल कोई मार्ग चुन लेते हैं। परमात्मा के उन कल्पित रूपों तथा पूजा के उन मार्गों में से कौन-सा रूप और कौन-सा मार्ग सत्य है, इसके विवेक की आवश्यकता है। हमें देखना होगा कि ईश्वर-पूजा के नाम से हम कहीं किसी ऐसे मिथ्या आडम्बर में तो नहीं फँस गए हैं, जो ईश्वर से तो कोसों दूर है ही, समाज को भी पतन के गर्त में ले जानेवाला है? मनुष्य सत्य मार्ग का अवलम्बन कर नमन और नमस्कार के साथ सच्चिदानन्द-स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निविकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, सृष्टिकर्ता परमेश्वर की पूजा करे।

मनुष्य का तीसरा कर्तव्य यह है कि वह अन्तरात्मा की वाणी को सुने। जीवन में अनेक ऐसे समय आते हैं जब मनुष्य संशयों से घिर जाता है तथा कर्तव्य-निश्चय नहीं कर पाता। साथी-संगियों के तथा जिन्हें वह अपना बड़ा और हितचिन्तक मानता है उनके परामर्श भी उसके सन्देहों को नहीं काट पाते। ऐसे समय मनुष्य अपने आन्तरिक प्रज्ञान की सहायता ले, अन्तरात्मा के साथ ऐक्य स्थापित करे। सच्चे अन्तःकरण से निकली श्रावाज उसका मार्गदर्शन करेगी। अन्तरात्मा की आवाज को सुनकर, किंकर्तव्यविमूढ़-अवस्था से पार होकर वह सबल स्वरित निर्णय पर पहुँचे तथा उसे किया-रूप में परिणत करे।

साभार-वेदमंजरी

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

''श्री कृष्णा यश है छा रहा सर्वत्र भारत वर्ष में''

भारत सदैव श्रीकृष्णा का ऋणी रहेगा क्योंकि उन्होंने जीवन में कभी सत्य व धर्म को नहीं छोड़ा इसके लिए अपने स्वजन उनके शत्रु हो गए। कृष्ण ने वेद प्रतिपादित सर्व हितकारी समस्त भूमंडल के आचरण योग्य धर्म का प्रचार किया। जिस धर्म में जिस ज्ञान का साक्षात्कार होता है वह सर्वसाधारण मनुष्य की बुद्धि विवेक से अलग हटकर है। श्री कृष्ण ने अपने सारे कार्य मनुष्य के रूप में पूर्ण किए। अपने तप, त्याग, कूटनीति, बुद्धि, कौशल आदि के द्वारा अधर्म पर चलने वालों का नाश किया। गीता में श्री कृष्ण का अनुपम कर्म योग रत्न है जिसके द्वारा फल की इच्छा के बिना कर्म करने की शिक्षा दी है-

कर्मेण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्व कमर्णि।।

गीता २/४७

अर्थात मनुष्य का कर्म में ही अधिकार है, उसके फल में कभी नहीं। उसे कर्म फल का हेतु नहीं बनना चाहिए और अकर्म में मनुष्य की प्रीति नहीं होनी चाहिए

लोकहित रहित कर्म को अकर्म कहा जाता है उसे करना न करना कर्ता के वश में होता है। आसक्तिहीन होकर जन कल्याण के लिए किए गए कर्म चाहे वह धर्म की रक्षा के लिए हो या शरीर रक्षा हेतु, उस मनुष्य के कर्म उसे बांध नहीं सकते। इस कर्म बंधन रहित अवस्था तक पहुंचना ही मनुष्य का बुद्धि योग युक्त होना कहा जाता है।

श्री कृष्ण के चरित्र को लेकर पुराणों आदि में अनेक गलत आक्षेप लगाए गए जो कृष्ण जैसे पवित्र व दृढ़ प्रतिज्ञा महामानव को बदनाम करने का षड्यंत्र मात्र है। श्री कृष्ण आदर्श मनुष्य थे। मनुष्य का आदर्श प्रचारित करने के लिए उनका जन्म हुआ था। वे अपराजेय, अपराजित, विशुद्ध पुण्यमय, प्रेममय, दयामय दृढ़कर्मी, धर्मात्मा वेदज्ञ, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ, लोकहितैषी, न्यायशील, क्षमाशील, निर्भय, निरहंकार, योगी एवं तपस्वी थे। वह मनुष्य रूप में देव थे। श्रीमान बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय ने श्री कृष्ण चरित्र में श्री कृष्ण के इन गुणों का वर्णन किया है।

महर्षि देव दयानंद ने अपने कालजयी ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश के ११वें समुल्लास में श्री कृष्ण के संबंध में लिखा है-''देखो! श्री कृष्ण का इतिहास महाभारत में अतिउत्तम है। उनके गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश हैं। जिसमें कोई धर्म या आचरण श्री कृष्ण ने जन्म से मरण पर्यंत बुरा कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाए हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी लगायी और कुन्जा दासी से समागम पर स्त्रियों से रासमंडल क्रीडा आदि मिथ्या दोष श्री कृष्णा में लगाए हैं। इसको पढ़-पढ़ा, सुन सुना के अन्य मत वाले श्री कृष्ण जी की बहुत सी निंदा करते हैं जो यह भागवत ना होता तो श्री कृष्ण के सदस्य महात्माओं की झूठी निंदा क्यों कर होती।

समस्त आर्य जाति का विलुप्त होता वैभव विधर्मियों द्वारा हिंदुओं का छल बल, धन से किया जा रहा धर्मांतरण आज श्री कृष्ण जैसे नीतिवान व गुणी का देश रास्ता देख रहा है। काश श्री कृष्णा पर ऐसे आधारहीन लांछन लगाने से पहले उनके उज्ज्वल जीवन चरित्र को हमें पढ़कर इसका अनुकरण करना चाहिए। महाभारत के उद्योग पर्व ७०/१२ में सत्य लिखा है--

यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः।
जहाँ धर्म है वहाँ श्री कृष्ण हैं, जहाँ श्री कृष्ण है, वहीं विजय है।
सत्ये प्रतिष्ठितः कृष्णःसत्यमत्र प्रतिष्ठितम्।।

अर्थात् सत्य में श्री कृष्ण सदा सर्वदा स्थित रहते थे। सत्य भी श्रीकृष्ण जी में स्थित रहता था। आज श्री कृष्ण का यश केवल भारत में ही नहीं पूरे विश्व में छाया है।

कविवरण श्री शिव नारायण द्विवेदी जी ने श्री कृष्ण जी के सम्बन्ध में मिथ्यावादियों को आइना दिखाते हुए लिखा है--

जो, कृष्ण प्यारे! सत्य का अवलम्ब तुम लेते नहीं,
तो सत्य ही संसार का इतिहास होता कुछ कहीं।
कर्त्तव्य में रत फिर न होते सत्य सज्जन जानिये,
सत्यांश से भी सत्य का उठना ही निश्चय मानिये।

श्री कृष्ण जी ने अपने जीवन में कभी हार नहीं मानी, कुछ समय के लिए लगता रहा कि वह पलायन वादी हैं, लेकिन वह पलायन भी उनकी रणनीति व कूटिनीति का हिस्सा था। अधर्म पर चलने वालों के लिए उनकी मृत्यु या नाश जिस प्रकार जैसे भी हो, उनका लक्ष्य होता था।

महाभारत के सभा पर्व के आठवें अध्याय में भीष्म पितामह कृष्ण के सम्बन्ध में कहते हैं--

वेद वेदांग विज्ञानं बलं चाभ्यधिकं तथा।
नृणां लोके कोडन्योऽस्ति विशिष्ट केशवादृते।।
दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्य ह्रींः कीर्ति बुधिरूत्तमा।
सन्न श्रीर्धृस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियचताच्युते।।

अर्थात्-श्री कृष्ण में वेद वेदांगों का ज्ञान तो है ही, बल भी सबसे अधिक है। इनके सिवा इस युग के संसार में मनुष्यों में दूसरा कौन सबसे बढ़कर है।

दान, दक्षता, शास्त्र ज्ञान, शौर्य, आत्म लज्जा, कीर्ति उत्तम बुद्धि, विनय, श्री, धृति, तुष्टि और पुष्टि ये सभी श्रेष्ठ गुण श्री कृष्ण जी में नित्य विद्यमान हैं।

श्री कृष्ण के जीवन से हमें प्रेरणा लेकर हम अपने जीवन को सुधार सकते हैं। यही कृष्ण जन्म की सार्थक सीख होगी।

गतांक से आगे.....

सत्यार्थ प्रकाश

अथ त्रयोदश समुल्लास

अथ कृश्चीनमत विषयं व्याख्यास्यामः

जबूर का दूसरा भाग

काल के समाचार की पहली पुस्तक

मत्ती रचित इज्जील

(समीक्षक) यह बात भी मानने योग्य नहीं, क्योंकि सृष्टिक्रम और विद्याविरुद्ध है। प्रथम ईश्वर के पास दूतों का होना, उनको जहां-तहां भेजना, ऊपर ने उतरना, क्या तहसीलदारी, कलेक्टरी के समान ईश्वर को बना दिया? क्या उसी शरीर से स्वर्ग को गया और जी उठा? क्योंकि उन स्त्रियों ने उसके पग पकड़ के प्रणाम किया तो क्या वही शरीर था? और वह तीन दिन लों सड़ क्यों न गया ? और अपने मुख से सब का अधिकारी बनना केवल दम्भ की बात है। शिष्यों से मिलना और उनसे सब बातें करनी असम्भव हैं। क्योंकि जो ये बातें सच हों तो आजकल भी कोई क्यों नहीं जी उठते? और उसी शरीर से स्वर्ग को क्यों नहीं जाते ?

यह मत्तीरचित्त इंजील का विषय हो चुका। अब मार्करचित इंजील के विषय में लिखा जाता है।। ९१।।

मार्क रचित इंजील

९२ - यह क्या बढ़ई नहीं है।

-इं०मार्क प० ६। आ० ३।।

(समीक्षक) असल में यूसफ बढ़ई था, इसलिये ईसा भी बढ़ई था। कितने ही वर्ष तक बढ़ई का काम करता था। पश्चात् पैगम्बर बनता-बनता ईश्वर का बेटा ही बन गया और जंगली लोगों ने बना लिया तभी बड़ी कारीगरी चलाई। काट कूट फूट फाट करना उसका काम है।। ९२।।

लूका रचित इंजील

९३ - यीशु ने उससे कहा तू मुझे उत्तम क्यों कहता है, कोई उत्तम नहीं है, केवल एक अर्थात् ईश्वर।।

-इं० लू० प० १८। आ० १९।।

(समीक्षक) जब ईसा ही एक अद्वितीय ईश्वर कहाता है तो ईसाइयों ने पवित्रात्मा पिता और पुत्र तीन कहां से बना लिये ?।।९३।।

९४-तब उसे हेरोद के पास भेजा।। हेरोद यीशु को देख के अति आनन्दित हुआ क्योंकि वह उसको बहुत दिनों से देखने चाहता था इसलिये कि उसके विषय में बहुत सी बातें सुनी थीं और उसका कुछ आश्चर्य कर्म्म देखने की उसको आशा हुई। उसने उससे बहुत बातें पूछीं परन्तु उसने उसे कुछ उत्तर न दिया।।

-इ० लू० प० २३। आ० ७ ८ ९ ।।

(समीक्षक) यह बात मत्तीरचित में नहीं है इसलिए ये साक्षी बिगड़ गये। क्योंकि साक्षी एक से होने चाहियें और जो ईसा चतुर और करामाती होता तो उत्तर देता और करामात भी दिखलाता। इससे विदित होता है कि ईसा में विद्या और करामात कुछ भी न थी।। ९४।।

क्रमशः अगले अंक में...

दयानन्द शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-संग्रह

जैनमत

(जैन साधु सिद्धकरण जी से मसूदा में शास्त्रार्थ- ६ जौलाई से १६ जौलाई, १८८१ तक)

जब आषाढ़ बदि १२ संवत् १९३८ तदनुसार २३ जून, सन् १८८१ को स्वामी जी धर्मोपदेश के निमित्त मसूदा पधारे तो कई दिन तक निरन्तर व्याख्यान देने के पश्चात् ५ जौलाई, सन् १८८१ को राव बहादुरसिंह साहब रईस मसूदा ने अपनी रियासत के सम्मानित जैनियों को बुलाकर कहा कि तुम अपने किसी विद्वान् पण्डित या मतावलम्बी को बुलाओ ताकि उससे स्वामी जी का शास्त्रार्थ कराया जावे और सत्यासत्य का निर्णय हो। जैनियों ने उत्तर दिया कि हम अपने साधु सिद्धकरण जी को बुलाते हैं, बे स्वामी जी से शास्त्रार्थ करेंगे ।

रावसाहब ने कहा कि वे कहाँ हैं ? जैनियों ने उत्तर दिया कि वे ग्राम सर्वाड़ किशनगढ़ क्षेत्र में यहाँ से १६ कोस पर हैं। रावसाहब ने कहा कि हमारे यहाँ से सवारी ले जाओ और तुम में से कोई जाकर साधु जी को बुला लाये। उन्होंने उत्तर दिया कि सवारी पर बैठकर वे नहीं आते परन्तु उनका चतुर्मासा यहाँ पर करना निश्चित हुआ है, इसलिए विश्वास है कि कल आ जावेंगे। दैवयोग से प्रातःकाल आषाढ़ सुदि १०, संवत् १९३८ तदनुसार ६ जौलाई, सन् १८८१ बुधवार को साधु जी वहाँ आ विराजे । आषाढ़ सुदि १३ अर्थात् ९ जौलाई सन् १८८१ शनिवार को स्वामी जी महाराज अपने नियमानुसार भ्रमण को गये तो सिद्धकरण साधु से जो शौचादि से निवृत्त होकर आते थे, मार्ग में भेंट हो गई। साधु ने स्वामी जी के निकट आकर कहा कि आपका क्या नाम और कहाँ से पधारना हुआ ।

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मेरा नाम दयानन्द सरस्वती है और अजमेर से आया हूँ। फिर स्वामी जी ने कहा कि आपका क्या नाम है और कहां से आना हुआ । साधु जी ने कहा कि मेरा नाम सिद्धकरण है और सर्वाड़ किशनगढ़ क्षेत्र से आया हूँ, चार मास यहीं रहूँगा।

स्वामी जी - यहाँ पर आप कहाँ ठहरे हैं।

साधु ने कहा कि एक उपाश्रय में ।

स्वामी जी ने कहा कि आप ही को जैनियों ने बुलाया है ?

साधु० -- हाँ मुझी को ।

और साधु जी ने कहा कि आपका पेट तो बड़ा मोटा है, क्या इसमें ज्ञान भरा हैं ? आप लोहे का तबा बाँध लीजिये नहीं तो फट जायेगा । आपको ज्ञान-अजीर्ण हो रहा है।

स्वामी जी ने उसका उस समय उत्तर देना अनुचित समझ साधु से यह प्रश्न किया कि आप लोग मुख पर पट्टी बाँधते और गर्म जल क्यों पीते हो ?

साधु जी ने कहा कि जो आप भी मुख पर पट्टी बाँध तो मैं इसका उत्तर दू ।

अभी इनमें परस्पर वादानुवाद हो ही रहा था कि रावसाहब ने जो प्रायः अपने महल की छत पर बैठ प्रातःकाल दूरवीक्षरण द्वारा स्वामी जी को भ्रमरण करते देखा करते थे, देखा कि किसी से स्वामी जी वार्ता कर रहे हैं। तत्काल ही रावसाहब घोड़े पर सवार होकर स्वामी जी के पास या उपस्थित हुए। रावसाहब को देख साधु चलने लगा। तब रावसाहब ने साधु जी से कहा कि ठहरो, प्रश्न करो, क्यों जाते हो ? अन्त को रावसाहब के आते ही साधु जी चले ही गये और स्वामी जी महाराज और राव बहादुरसिंह जी मार्ग में परस्पर वार्ता करते हुए निज स्थान को पधारे। फिर

शेष पृष्ठ ४ पर.....

श्रीकृष्ण की कितनी पत्नियाँ थी?

(एक, दो या १६१०८ ?)

-डॉ० भवानीलाल भारतीय

कल एक लेख पढ़ा जिसमे श्रीकृष्ण की १६१०८ पत्नियों के बारे में लिखा गया था, प्राय विधर्मी लोग हिन्दुओ के सामने कई बार श्रीकृष्ण के विवाह कई बारे में शंका करते है और पुराणों को मानने वाले हिन्दू भी श्रीकृष्ण को बहुपत्नियों के स्वामी मानते है। तो क्या कृष्ण ने १६१०८ विवाह किये थे ? क्या पुराणों ने श्रीकृष्ण का सही चरित्र चित्रण किया है? इस तरह के कई प्रश्न मन में कई बार आते है। पाठक इस लेख को एक बार अवश्य पढ़े और आत्मचिंतन करे की -श्री कृष्ण क्या थे ओर क्या बना दिए गए, धर्मराज युधिष्ठिर के मन में जब राजसूय यज्ञ करने की इच्छा उत्पन्न हुई तो उन्होंने अपने शुभचिन्तकों तथा मित्रों से इस विषय में परामर्श किया। सबने एकमत होकर अपनी सहमति प्रकट की और युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ का उपयुक्त अधिकारी घोषित किया, परन्तु युधिष्ठिर को तबतक संतोष नहीं हुआ जबतक उन्होंने कृष्ण से एतद्विषयक परामर्श नहीं कर लिया। युधिष्ठिर का आदेश पाकर वे द्वारिका से चल पड़े और इन्द्रप्रस्थ आकर उन्होंने उनसे भेंट की।

युधिष्ठिर बोले, ''मैंने राजसूय यज्ञ करने की इच्छा प्रकट की है, किन्तु केवल इच्छा करने-मात्र से ही यह कार्य पूरा नहीं हो सकता, यह तुम जानते हो। मेरे मित्र-वर्ग ने भी एकमत होकर राजसूर्य के सम्बन्ध में अपनी सम्मति दी है, परन्तु हे कृष्ण, उसकी कर्तव्यता के विषय में तुम्हारी बात ही प्रमाण है, क्योंकि कोई-कोई जन मित्रतावश किसी कार्य का दोष कह नहीं सकते, कोई-कोई स्वार्थवश केवल स्वामी का प्रिय विषय ही कहते हैं, और कोई-कोई अपने लिए जो प्रिय होता है उसी को कर्तव्य मान लेते हैं। परन्तु तुम काम-क्रोध के वश में नहीं हो, अतः लोक में जो हितकारी है, वही सत्य कहो।'' सभापर्व, १३।४६-५१

युधिष्ठिर के इस कथन से जाना जाता है कि वह कृष्ण को आप्तपुरुष मानते थे और उनके कथन को यथार्थ, हितकर तथा प्रामाणिक समझते थे। इससे पूर्व उसने मंत्रिपरिषद्, अपने भ्रातृवर्ग और धौम्य, द्वैपायन आदि ऋषियों से राजसूय-विषयक परामर्श कर लिया था, परन्तु उसने अन्तिम रूप में कृष्ण की सम्मति को ही महत्त्व देना उचित समझा। युधिष्ठिर के इस कथन से कृष्ण के चरित्र की महानता पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। वह उन्हें काम और क्रोध से रहित पुरुषोत्तम समझते हैं।

बंकिमचंद्र जी ने इस प्रसंग में ठीक ही लिखा है-

नित्य का चाल-चलन देखनेवाले कृष्ण के फुफेरे भाई कृष्ण को क्या समझते थे और हम उन्हें क्या समझते हैं ? वे लोग कृष्ण को कामक्रोध से विवर्जित, सबसे सत्यवादी, सब दोषों से रहित, सर्वलोकोत्तम, सर्वज्ञ और सर्वकृत समझते थे, और हम उन्हें लम्पट, माखन-चोर, कुचक्री, मिथ्यावादी, कापुरुष और सब दोषों की खान समझते हैं। प्राचीन ग्रंथों में जिसे धर्म का आदर्श माना है उसे जाति ने इतना नीचे गिरा दिया, उस जाति का धर्म लोप हो जाय तो आश्चर्य ही क्या? कृष्णचरित्र, पृ० २६३

पाठक ध्यान देवे, यह लेख डॉ० भवानीलाल भारतीय जी की पुस्तक श्री कृष्ण चरित्र के दो अध्याय (रुक्मिणी-परिणय व बहुविवाह का आरोप और उसकी असत्यता) को जोड़ कर बनाया जा रहा है । ताकि आप योगेश्वर कृष्ण की विवाह के बारे उठ रही शंकाओ का समाधान आसानी से प्राप्त कर पाए। आप इस पुस्तक को पढ़ कर योगेश्वर कृष्ण के बारे में ओर भी शंकाओ का समाधान पा सकते है -

रुक्मिणी– पुराण-लेखकों ने श्री कृष्ण पर बहुविवाह के जो मिथ्या आरोप लगाये हैं वे सब कपोल-कल्पित हैं। वस्तुतः रुक्मिणी ही कृष्ण की एकमात्र विवाहिता पत्नी थी । यह विदर्भराज भीष्मक की पुत्री थी । 'भागवत' में लिखा है कि राजा भीष्मक भी अपनी पुत्री का विवाह श्री कृष्ण के ही साथ करना चाहते थे, परन्तु उनके पुत्र रुक्मी की इसमें सम्मति नहीं थी। वह चेदिराज दमघोष के पुत्र शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह करना चाहता था।(भागवत १०, अध्याय ५२) अन्त में पुत्र की इच्छा की ही विजय हुई और शिशुपाल के साथ रुक्मिणी के विवाह का निश्चय हो गया।

रुक्मिणी स्वय कृष्ण के अपूर्व रूप एवं गुणों की चर्चा सुन चुकी थी । उसे यह समाचार सुनकर बड़ा खेद हुआ कि उसका विवाह उसकी इच्छा के प्रतिकूल हो रहा है। उसने एक वृद्ध ब्राह्मण द्वारा अपना प्रणय-संदेश श्री कृष्ण के पास द्वारिका भेजा। रुक्मिणी के सन्देश का अभिप्राय यह था कि अमुक दिन शिशुपाल मेरा परिणय करने के लिए आयगा परन्तु मैंने तो अपने को आपके प्रति समर्पित कर दिया है। आप मेरे उद्धारार्थ आयें, मैं नगर के बाहर निश्चित समय पर आपकी प्रतीक्षा करूंगी।

रुक्मिणी का उपर्युक्त संदेश पाकर कृष्ण बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने सारथी को रथ तैयार करने और विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर चलने का आदेश दिया। नियत समय पर रथारूढ़ होकर उन्होंने विदर्भ की ओर प्रस्थान किया। उधर शिशुपाल को भी यह समाचार मिल गया कि कृष्ण रुक्मिणी-हरण का प्रयत्न अवश्य करेंगे । इसलिये वह भी विवाह के अवसर पर अपने मित्र राजाओं को सेना-सहित लेकर कुण्डिनपुर पहुँचा। नियत समय पर रुक्मिणी नगर के बाहर उद्यान में भ्रमणार्थ आई और वहाँ पहले से ही उपस्थित कृष्ण ने उसके द्वारा दिये संकेत को समझकर उसे अपने रथ पर बिठाया और द्वारिका के लिए प्रस्थान किया। रुक्मिणी को इस प्रकार आसानी से कृष्ण के द्वारा अपहृत होता देखकर शिशुपाल के क्रोध का पार न रहा। उसने कृष्ण पर आक्रमण किया, किन्तु बलराम अपने यादव-दल के साथ कृष्ण की सहायता हेतु वहाँ पर उपस्थित थे। उन्होंने शिशुपाल की सेना को मार भगाया। जब रुक्मिणी के हरण का समाचार रुक्मी को मिला तो उसने श्री कृष्ण का पीछा किया, किन्तु वह कृष्ण के हाथों परास्त हुआ और कृष्ण ने दण्डस्वरूप अपने शस्त्र से उसके सिर का मुण्डन कर उसे विरूप कर दिया। अन्त में रुक्मिणी और बलराम के कहने से वे अपने साले को छोड़ देने पर राजी हुए। इस प्रकार विरोधी को पराजित कर वे सकुशल द्वारिका पहुँचे। वहाँ वैदिक विधि से उन्होंने रुक्मिणी का पाणिग्रहण किया।(भागवत, दशम स्कन्ध, उत्तरार्द्ध, अध्याय ५२,५३,५४)

'मनुस्मृति' में वर्णित आठ प्रकार के विवाहों में एक प्रकार राक्षसविवाह का भी है।(अध्याय ६।२१) इसके अनुसार कन्या का बलात् हरण कर उससे विवाह किया जाता है। उक्त स्मृति ने राक्षस-विवाह को क्षत्रियों के लिए प्रशस्त बताया है। इस विवाह के अच्छे-बुरे दोनों पहलू हैं । यदि कन्या की इच्छा के प्रतिकूल उसका अपहरण किया जाता है तब तो यह स्पष्ट ही अधर्म-कृत्य है। परन्तु एक परिस्थिति ऐसी आ सकती है जबकि कन्या तो वर को पसन्द करे किन्तु उसके माता-पिता की सम्मति उसे इच्छुक वर के साथ ब्याह देने की नहीं होती। ऐसी स्थिति में प्राचीन काल में कन्या-हरण के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रहता था। अतः, यह कहना कि राक्षस-विवाह निश्चित रूप से अन्यायपूर्ण, अत्याचारयुक्त अथवा बलात्कार का प्रतीक है, अनुचित होगा । यहाँ रुक्मिणी-हरण के प्रसंग में भी जो कुछ घटनायें घटीं, वे रुक्मिणी की इच्छा के अनुकूल ही थीं। कृष्ण के साथ सम्बन्ध होने से रुक्मिणी को प्रसन्नता ही हुई क्योंकि रूप, गुण और योग्यता की दृष्टि से कृष्ण ही उसके अनुकूल पति हो सकते थे। आज चाहे राक्षसविवाह का विधान विद्यमान सामाजिक मूल्यों की दृष्टि से कितना ही अनुचित अथवा आपत्तिजनक क्यों न दीख पड़े, परन्तु कृष्ण के युग में परिस्थितियाँ भिन्न थीं । उस युग में राक्षस-विवाह को अनुचित नहीं माना जाता था, अतः तत्कालीन आचार-शास्त्र के मापदण्डों से ही हमें रुक्मिणी-हरण की घटना की आलोचना करनी चाहिए। जब हम 'महाभारत'-युग की सामाजिक मान्यताओं के आधार पर इस घटना की समीक्षा करते हैं तब हमें उसमें कुछ भी अनौचित्य नहीं दीखता।

महाभारतोक्त शिशुपाल-वध प्रकरण में भी इस घटना की चर्चा हुई है। श्री कृष्ण कहते हैं

रुक्मिण्यमस्य मूढस्य
प्रार्थनासोन्मुमूर्षतः।
न च तां
प्राप्तवान् मूढः शूद्रो वेद श्रुतीमिव।।
(सभापर्व, ४५।।१५)

अर्थात् 'इस मूढ़ (शिशुपाल) ने मृत्यु का अभिलाषी बनकर रुक्मिणी के साथ विवाह के लिए प्रार्थना की थी, परन्तु शूद्र के वेद न सुन सकने की भाँति वह उसे प्राप्त नहीं कर सका।' शिशुपाल ने इस आक्षेप का उत्तर इस प्रकार दिया।

मत्पूर्वा रुक्मिणीं कृष्ण संसत्सु
परिकीर्तयन् ।
विशेषतः पर्थिवेषु वीडां न कुरुषे
कथम् ।।
मन्यमानो हि कः सत्सु पुरुषः
परिकीर्तयेत् ।
अन्यपूर्वा स्त्रियां जातु त्वदन्यो
मधुसूदन।।
(सभापर्व, ४५।१८-१९)

'अजी कृष्ण, पहले से ही मेरे लिए निर्दिष्ट रुक्मिणी की बात इस सभा में, विशेषतः राजाओं के समक्ष कहते तुम्हें लज्जा नहीं आई ? अजी मधुसूदन, तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कौन अपने को पुरुष कहकर अपनी स्त्री को 'अन्यपूर्वा' कह सकता है ?'

'महाभारत के इस प्रसंग को उद्धृत करने के अनन्तर बंकिम ने तो यहाँ तक सिद्ध करने का प्रयास किया है कि रुक्मिणी का हरण हुआ ही नहीं । शिशुपाल ने उससे विवाह करने की इच्छा अवश्य व्यक्त की थी, किन्तु भीष्मक ने उसे कृष्ण से ब्याह दिया। अपने कथन के प्रमाण में बंकिम इस तथ्य का उल्लेख करते हैं कि कृष्ण के लिए अपशब्दों और कुवाच्यों का प्रयोग करते समय भी शिशुपाल ने कृष्ण पर रुक्मिणी के हरण का आरोप नहीं लगाया, जबकि भीष्म की निंदा करते समय उसने पितामह पर काशिराज की कन्याओं के हरण का आरोप लगाया था।(सभापर्व, ४१।२२) कुछ भी हो, यह तो निर्विवाद है कि रुक्मिणी ही कृष्ण की एकमात्र पत्नी थी अन्य स्त्रियों के साथ उनका कभी विवाह हुआ ही नहीं, यह आगे प्रमाण-पुरस्सर सिद्ध किया जायगा।

सन्तान–रुक्मिणी से कृष्ण को प्रद्युम्न-जैसा सौन्दर्य, शील एवं गुणों में पिता के सर्वथा अनुरूप पुत्र हुआ। ऐसी उत्तम सन्तान प्राप्त करने के पूर्व कृष्ण ने स्वपत्नी-सहित १२ वर्ष पर्यन्त प्रखर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया था तथा हिमालय पर्वत पर रहकर तपस्या की थी।(ब्रह्मचर्य महद्घोरं चीत्व द्वादश वर्षकम् । हिमवत् पार्श्वमभ्येत्य यो मया तपसाजितः।। --सौप्तिक पर्व, १२।३०) जो लोग कृष्ण को लम्पट और दुराचारी कहने से बाज नहीं आते उन्हें इस कथन को आँखें खोलकर पढ़ना चाहिए। कृष्ण-जैसा संयमी, तपस्वी तथा सदाचारी उन्हें संसार के इतिहास में अन्यत्र नहीं मिलेगा।

कृष्ण पर बहुविवाह का आरोप और उसकी असत्यता पुराण-लेखकों को कृष्ण के एकपत्नी-व्रत से संतोष नहीं हुआ। वे कृष्ण को बहुपत्नी-गामी के रूप में चित्रित करना चाहते थे, अतः उन्होंने कृष्ण की आठ पटरानियों की कहानी गढ़ी, और जब उन्हें आठ से भी सन्तोष नहीं हुआ तो एक कदम आगे बढ़कर कहने लगे कि कृष्ण के १६ सहस्र रानियाँ थीं।(१) 'भागवत' में रुक्मिणी के अतिरिक्त कृष्ण की निम्न सात रानियों के नाम आये हैं-(१) सत्यभामा, (२) जाम्बवन्ती ('विष्णुपुराण' में रोहिणी), (३) कालिन्दी, (४) सत्या, (५) लक्ष्मणा, (६) मित्रवृन्दा, (७) भद्रा।।

इन रानियों से कृष्ण के विवाह होने की कथायें भी पुराण-लेखकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से उद्धृत की हैं, जिनमें से कुछ पर यहाँ विचार किया जायगा। रुक्मिणी को कृष्ण की मुख्य महिषी कहा गया है। उसके अनन्तर सत्यभामा का नाम आता है। सत्यभामा और कृष्ण के विवाह की पृष्ठभूमि के रूप में भागवतकार ने एक कथा निम्न प्रकार कल्पित की है--सत्राजित नामक द्वारिकावासी एक यादव को भगवान् सूर्य से एक मणि प्राप्त हुई। कृष्ण ने उसे परामर्श दिया कि वह इस मणि को यादवपति महाराज उग्रसेन को भेंट-रूप में दे दे। सत्राजित ने कृष्ण के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। एक दिन सत्राजित का भाई प्रसेन उक्त मणि को धारण कर जंगल में शिकार खेलने चला गया । वहाँ एक सिंह ने उसे मार डाला और मणि छीन ली। सिंह की इसी बीच त्रेता काल के रीछ जाम्बवान् से मुठभेड़ हो गई और उसने सिंह को मारकर मणि अपने पास रख ली। इधर प्रसेन के मारे जाने और मणि के न मिलने पर लोगों ने कृष्ण पर ही संदेह किया कि हो न हो, इन्होंने ही प्रसेन को मारकर उससे मणि छीन ली है । कृष्ण ने अपने पर लगाये गये चोरी या साहस के कलंक से बचने के लिए जब स्वयं जाकर जंगल में खोज की तो उन्हें सिंह के पाँवों के चिह्न मिले, जिनके आधार पर वे रीछ की गुफा तक पहुँच गये। वहाँ उन्होंने देखा कि सूर्य-प्रदत्त मणि जाम्बवान् की पुत्री के पास है। मणि को प्राप्त करने के लिए कृष्ण और जाम्बवान् के बीच घोर युद्ध हुआ । अन्त में जाम्बवान् परास्त हो गया और उसने मणि तो कृष्ण को दी ही, साथ में अपनी कन्या का विवाह भी उनके साथ कर दिया। कृष्ण नवपरिणीता पत्नी तथा मणि के साथ स्वनगर में लौटे तथा मणि सत्राजित को लौटा दी । सत्राजित को कृष्ण के प्रति किये गये अपने आचरण से भय और खेद की प्रतीति हुई और उसने कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए स्वकन्या सत्यभामा का विवाह उनके साथ कर दिया तथा यौतक रूप में मणि भी उनके अर्पण कर दी।(२)

- - ध्यान दें - -

१. बहवस्ते भविष्यन्ति पुत्राः शत्रुसूदन।
स्त्रीणां षोडश साहस्र भत्रिष्यन्ति शताधिक।।
(देवीभागवत, ४।।२५।।५७)

ददर्श कन्यास्तत्रस्था सहस्राणां च
षोडशः ।
समेक्षणे च तासां च पाणि जग्राह
माधवः ।।
ताभिः सार्ध से रेमे क्रमेण च
शुभेक्षणे ।।
(ब्रह्मवैवर्त पुराण, खण्ड ४, अ० ११२)

२. भागवत, दशम स्कन्ध, उ०,

शेष पृष्ठ ६ पर.....

ऐसे थे हमारे योगेश्वर श्री कृष्ण चन्द्र भगवान

-आर्य कृष्ण शास्त्री

आर्यावर्त में श्री राम और श्री कृष्ण ऐसे दो महापुरुष हुए हैं जिन्हे राष्ट्र पुरुष और इतिहास पुरुष की दृष्टि से अद्वितीय कहा जा सकता है। श्री राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और श्री कृष्ण लीला पुरुषोत्तम हैं। पुरुषोत्तम दोनों हैं। पुरुषोत्तम अर्थात उत्तम पुरुष अर्थात आर्य। महर्षि दयानंद ने सदाचार निर्माणार्थ जिस सत्पुरुष की गणना सर्वप्रथम की है, वह योगेश्वर श्री कृष्ण ही हैं। उन्होंने लिखा है श्री कृष्ण का जीवन आप्त (श्रेष्ठ) पुरुषों के सदृश है- देखो श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अति उत्तम है उनके गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश हैं। जिसमें कोई धर्म का आचरण श्री कृष्ण ने जन्म से मरण पर्यंत बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा कहीं नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाए हैं, जिनको पढ़-पढ़ा , सुन-सुन के अन्य मत वाले श्री कृष्ण जी की बहुत सी निंदा करते हैं। जो यह भागवत ना होता तो श्री कृष्ण जी के सदस्य महात्माओं की झूठी निंदा क्यों कर होती!

आओ जाने योगेश्वर के महान चरित्र के विषय में-

'सन्ध्या और यज्ञ के प्रति श्री कृष्ण की निष्ठा'

श्री कृष्ण ईश्वर के बहुत बड़े उपासक थे। किसी भी परिस्थिति में उन्होंने संध्या एवं यज्ञ का परित्याग नहीं किया। युद्ध काल में भी वह निरंतर संध्या यज्ञ करते थे। दूत कर्म पर जाते हुए रास्ते में सांझ हो गई तो वे संध्या के लिए रुक गए। हस्तिनापुर में प्रातः काल सभा में जाने से पहले संध्या तथा अग्निहोत्र से निवृत हुए हैं। अभिमन्यु के वध के दिन सायं काल अपने शिविर में जाने से पूर्व श्री कृष्ण और अर्जुन दोनों ने संध्या की है।

अवतीर्य स्थात् तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि।
स्थमोचनमादिश्य सन्ध्यामुपविशेष ह।।

(महाभारत उद्योग पर्व- ८३/२१)

श्री कृष्ण अपने समय के एक अद्वितीय विद्वान थे। वे वेद वेदंगों के ज्ञाता, दान, दया, बुद्धि, शूरता, शालीनता, चतुराई, नम्रता, तेजस्विता, धैर्य, संतोष, आदि सभी गुणों में अनुपम थे। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय भीष्म पितामह शिशुपाल को उत्तर देते हुए कहते हैं कि ये श्री कृष्ण बल, बुद्धि, वेद वेदंगों के ज्ञान, चरित्र में अद्वितीय हैं। आज संपूर्ण भारतवर्ष में उनके जैसा योद्धा, उनके जैसा विद्वान, उनके जैसा बुद्धिमान, उनके जैसा चरित्रवान कोई दूसरा नहीं है।

वेदवेदांगविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा।
नृणां लोके हि कोऽन्योसस्ति विशिष्टः केशवाद्रिते।।
दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमा।
सन्नतिः श्रीधृतिष्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताच्युते।

(महाभारत सभा पर्व-३८/१९-२०)

वास्तव में श्री कृष्ण के समान प्रगलभ, बुद्धिशाली, कर्तृत्ववान, प्रज्ञावान, व्यवहार कुशल, ज्ञानी एवं पराक्रमी पुरुष आज तक संसार में नहीं हुआ। सत्य निष्ठा के समान ही वे कुटिल राजनीति के भी उपदेष्टा थे। ग्रहस्थ जीवन के प्रेमी होने के साथ-साथ अत्यंत संयमी और योग विद्या पारंगत योगेश्वर भी थे। संक्षेप में यह निशंकोच कहा जा सकता है कि श्री कृष्ण भारत की संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता तथा राष्ट्र धर्म के मूर्तिमन्त प्रतीक हैं।

पुराणों ने ''चोर-जार शिखमणि'' के रूप में जिस कृष्ण का चित्रण किया है उसका अनुमोदन महाभारत में कहीं नहीं है वह केवल पुराणों की लीला है। और इसके पीछे व्यक्तिगत वासनाओं की पूर्ति के लिए अवचेतन मन में छिपी मनोग्रंथियों का काव्यात्मक चोले में विकृत चित्रण मात्र है।

यह देश का कितना बड़ा दुर्भाग्य है कि कृष्ण का वह विकृत रूप तो घर-घर में प्रचलित है और जो महाभारत वर्णित शुद्ध स्वरूप है जो राष्ट्र के लिए अक्षय प्रेरणा का स्रोत बन सकता है उसकी चर्चा दुर्लभ है।

पुराणौं की इस लीला के कारण हमने अपने पूर्वज को कलंकित करने की कोई और कसर नहीं छोड़ी है। इस प्रसंग में आज निम्न पंक्तियां सत्य सिद्ध होती प्रतीत होती है-----

''आओ कृष्ण पर कलंक लगायें।
''तुम भी नाचो, हम भी नाचे, मिलकर के सब रास रचाएं।
तुम एक बार राधा बन जाओ, और कृष्ण हम स्वयं बन जाएं।।
आओ कृष्णा पर कलंक लगाएं।
चुनरी खींचे, चूड़ी बेचें, मनिहार हम सब बन जाए,
संध्या- यज्ञ बंद करो सब, वेद ताक् पर रख दो सारे।
दधि- माखन हम खूब चुराएं। चोर-जार सारे बन जाएं। आओ कृष्ण पर कलंक लगायें।।
कंस वध की बात करो ना, दूत कर्म हमसे ना होगा।
धर्म सारथी बनना छोड़ो, आओ अपने ऐब छुपाएं।
धर्म युद्ध निर्णायक बनकर हम क्यों अपनी जान फसायें।
आओ कृष्ण पर कलंक लगाएं।''

योगेश्वर के चरित्र को हम स्वयं महाभारत के माध्यम से जाने और उनके चरित्र के शुद्ध स्वरूप को घर-घर पहुंचाएं और अपने उस महान पूर्वज को हम कलंकित न करें, ना होने दें क्योंकि महाभारत के विषय में एक युक्ति है-

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।

जो कुछ महाभारत में है वहीं अन्य ग्रन्थों में है, और जो इसमें नहीं है तो फिर कहीं भी नहीं है। लोक में तत्वज्ञान संबंधी ऐसी कोई सामग्री नहीं है जो इस महाभारत में विद्यमान ना हो।

आओ हम सभी मिलकर योगेश्वर श्री कृष्ण के जन्मोत्सव को आज शुद्ध रूप से मनायें। संध्या एवं यज्ञ करें और प्रतिदिन करने का संकल्प लें। जिस प्रकार भगवान श्री कृष्ण ने विषम परिस्थितियों में भी संध्या में यज्ञ का परित्याग नहीं किया, हम भी संध्या एवं यज्ञ को अपने जीवन का अंग बनाएं। और योगेश्वर के इस जन्मदिवस पर उनके उत्तम चरित्र का यश गान करें।

पृष्ठ.....२ का शेष

स्वामी जी ने श्रावण बदि २ संवत् १९३८ बुधवार तदनुसार १३ जौलाई, सन् १८८१ को निम्नलिखित प्रश्न पंडित छगनलाल कामदार और ज्योतिषी जगन्नाथ आदि सम्मानित व्यक्तियों के हाथ सिद्धकरण साधु के पास भेजे।

प्रश्न - जैन-मतान्तर्गत तुम लोग ढूंढ़िये जो मुख पर पट्टी बाँधना अच्छा जानते हो, यह तुम्हारी बात विद्या और प्रत्यक्षादि प्रमाणों की रीति से सिद्ध नहीं है। ईससे जो तुम ऐसा मानते हो कि मुख की वायु से जीव मरते हैं तो भी ठीक नहीं क्योंकि जीव अजर-अमर हैं और तुम भी ऐसा ही मानते होगे। जो तुम कहो कि जीव तो नहीं मरता परन्तु उसको पीड़ा अर्थात् दुःख देवें तो हम पाप के भागी होते हैं तो भी सर्वथा ठीक नहीं क्योंकि ऐसा किए बिना किसी का निर्वाह नहीं हो सकता। इसमें जो तुम कहते हो कि जहाँ तक हो सके , वहाँ तक जीवों की रक्षा करनी चाहिए। कारण सर्व वायु आदि पदार्थ जीवों से भरे हैं। इसलिए हम लोग मुख पर कपड़ा बाँधते हैं कि मुख से उष्ण वायु निकलने से बहुत से जीवों को दुःख और बाँधने से थोड़े जीवों को कष्ट पहुंचता है तो यह भी कहना आप लोगों का प्रयुक्त है क्योंकि कपड़ा बाँधने से जीवों को बहुत दुःख पहुंचता है। कारण यह है कि मुख पर कपड़ा बाँधने से गर्मी रखने से उष्णता अधिक होती हैं जैसे किसी मकान का द्वार बन्द हो और पर्दा डाला जाये तो उसमें गर्मी अधिक होती है और खुला रखने से कम होती है। इससे विदित होता है कि मुख पर कपड़ा बाँधने से जीवों को अधिक पीड़ा होती है। इसलिये जो कोई मुख पर कपड़ा बाँधते हैं वे जीवों को अधिक पीड़ा पहुंचाने से अधिक पापी होते हैं। जो नहीं बांधते वे उन बांधने वालों से अच्छे हैं। किन्तु जब तुम मुख पर कपड़ा बाँधते हो तो मुखद्वारा वायु रुककर नाक के छिद्र से जो बाहर निकलती है, वह जीवों के लिए अधिक दुःखदायी होती है। जैसे मुख से कोई अग्नि फूंके और कोई नल से तो नल से वायु चारों ओर से रुक अधिक बलवान् हो अग्नि से लगती है। इसी प्रकार नाक की वायु जीवों को अधिक पीड़ा पहुंचाती है। इससे तुम हिंसक हो । जो तुम कहो कि हम नाक और मुख पर एक कपड़ा बांधेंगे तो पूर्वोक्त रीति से मुख और नासिका दोनों की गर्मी बढ़कर दुगुनी हिंसा होगी। इससे मुख और नासिका पर कपड़ा बाँधना कदापि योग्य नहीं। दूसरे कपड़ा बाँधने से बोला भी ठीक-ठीक नहीं जाता। निरनुनासिक शब्दों को सानुनासिक कर देना दोष है। दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ता है क्योंकि शरीर के भीतर दुर्गन्ध है। शरीर से जितना वायु निकलता है वह दुर्गन्ध-युक्त ही है। जब वह रोका जाये तो अधिक दुर्गन्ध बढ़ता है जैसा कि बन्द जाजरूर। इस प्रकार मुखादि प्रक्षालन न करने और मुख पर कपड़ा बाँधने से अधिक दुर्गन्ध होकर अधिक रोग उत्पन्न करता है जैसा कि मेले आदि में। और न्यून दुर्गन्ध विशेष रोग नहीं करता, यह बात प्रत्यक्ष है। इससे यह सिद्ध हुआ कि अधिक दुर्गन्ध बढ़ाने वाला अधिक अपराधी होता है। जैसा कि आप लोग दन्तधावन और स्नानादि कम करने से दुर्गन्ध बढ़ाते हो जिससे रोगोत्पत्ति कर बुद्धि और पुरुषार्थ को नष्ट करके धर्मानुष्ठान के बाधक होते हो। जैसे जाजरूर (मलागार) के शुद्ध करने वालों की दुर्गन्ध के संग से न्यून बुद्धि होती है वैसे आप लोगों की क्यों नहीं होती होगी। जब दुर्गन्धयुक्त पुरुष की बुद्धि प्रति मन्द होती है तो उसके संगियों की क्यों नहीं होती होगी। ●●●

पृष्ठ.....१ का शेष

हम (अतुष्टवम्) प्रशंसा करें उस (विश्वामित्रस्य) सबके मित्र की ही उपासना आप लोग करें।

तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंसज्ज्योक्पश्यात्सूर्यमुच्चरन्तम्।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्याय नृतमाय नृणाम्।।

- ऋग्वेद ४/२५/४

पदार्थ - हे मनुष्यो ! (यः) जो (अग्निः) अग्नि के सदृश वर्तृतमान (भारतः) धारण करनेवाले का यह धारण करनेवाला (शर्म्म) गृह के सदृश सुख को (यंसत्) प्राप्त होवे वह (उच्चरन्तम्) ऊपर को घूमते हुए (सूर्य्यम्) सूर्य्यमण्डल को (ज्योक्) निरन्तर (पश्यात्) देखे (तस्मै) उस (नृणाम्) विद्या और उत्तमशीलयुक्त मनुष्यों के (नृतमाय) अत्यन्त मुखिया (नरे) नायक (नर्य्याय) मनुष्यों में कुशल (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य्यवान् के लिये (इति) ऐसा (आह) कहता है, उसको हम लोग (सुनवाम) उत्पन्न करें।

आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः। दिवोदासस्य सत्पतिः।।

-ऋग्वेद ६/१६/१९

पदार्थ - हे विद्वान् जनो ! जो (दिवोदासस्य) प्रकाश के देनेवाले का (भारतः) धारण करने वा पोषण करने और (वृत्रहा) मेघ को नाश करनेवाला (पुरुचेतनः) बहुत चेतन जिसमें वह (सत्पतिः) श्रेष्ठ स्वामी (अग्निः) अग्नि के सदृश तेजस्वी सूर्य्य (आ, अगामि) प्राप्त किया जाता है, उसका हम लोग सेवन करें।

उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत्। शोचा वि भाह्यजर।।

- ऋग्वेद ६/१६/४५

पदार्थ - हे (भारत) धारण करनेवाले (अजर) जरा दोष से रहित (अग्ने) विद्वन् ! आप (अजस्रेण) निरन्तर (द्युमत्) प्रकाशवाले को (दविद्युतत्) प्रकाशित करते हो, उसके लिये आप (उत्, शोचा) अत्यन्त प्रकाशित हूजिये और (वि, भाहि) विशेष करके प्रकाशित करिये।

उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत्। शोचा वि भाह्यजर।।

-सामवेद - १३८५

आचार्य रामनाथ वेदालंकार -

पदार्थ - हे (भारत) शरीर का भरण-पोषण करनेवाले, (अजर) अविनाशी (अग्ने) जीवात्मन् ! तुम (द्युमत्) शोभनीय रूप से (अजस्रेण) अविच्छिन्न तेज से (दविद्युतत्) अतिशय चमकते हुए (उत् शोच) उत्साहित होओ, (वि भाहि) विशेष यशस्वी होओ ।।

परमात्मा सब जीवात्माओं के माता-पिता होने से उपासनीय हैं

-मनमोहन कुमार आर्य

परमात्मा और आत्मा का सम्बन्ध व्याप्य-व्यापक, उपास्य-उपासक, स्वामी-सेवक, मित्र बन्धु व सखा आदि का है। परमात्मा और आत्मा दोनों इस जगत की अनादि चेतन सत्तायें हैं। ईश्वर के अनेक कार्यों में जीवों के पाप-पुण्यों का साक्षी होना तथा उन्हें उनके कर्मानुसार सुख व दुःख रूपी भोग प्रदान करना है। हमारा जो जन्म व मृत्यु होती है वह हमें परमात्मा से ही ईश्वरीय कर्म-फल विधान एवं हमारे शरीर का जन्म व मृत्युधर्मा होने के कारण से ही होती है। हम अपने किये हुए कर्मों को भूल जाते हैं परन्तु वह सभी कर्म ईश्वर के ज्ञान व स्मृति में सदा के लिए बने रहते हैं। इसी आधार पर हमें अपने वर्तमान जन्म मे पूर्वजन्मों के भोग करने से शेष कर्मों व इस जन्म के कर्मों का फल मिलता है। कर्म का फल भोग लेने के बाद ही उसका फल क्षय को प्राप्त व नष्ट होता है। यह भी जानने योग्य तथ्य है कि हमारे सभी शुभ व पुण्य कर्मों का फल सुख तथा अशुभ वा पाप कर्मों का फल दुःख होता है। कोई भी आत्मा वा मनुष्य दुःख को प्राप्त होना नहीं चाहता। इनसे बचने का उसके पास एक ही उपाय है कि वह अशुभ व पापकर्मों को करना छोड़ दे। अशुभ कर्म असत्य के मार्ग पर चलना होता है। असत्य बोलना अधर्म व पाप कहलाता है। असत्य का व्यवहार करने से मनुष्य का जीवन नीरस व सुखों से रहित हो जाता है। इसके विपरीत सत्य को जानकर सत्य का व्यवहार करने से मनुष्य का जीवन व उसकी आत्मा उन्नति को प्राप्त होकर उसे जीवन में सभी अभिलषित सुखों व उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। इसी कारण से हमारे प्राचीन ऋषियों ने आदिकाल से ही लोगों को शुभ व सत्य कर्मों का आचरण करने की प्रेरणा की थी।

सभी मनुष्य सुखी हों और स्वस्थ रहते हुए पूर्ण आयु को भोगें, इसके लिये हमारे ऋषियों ने वेद के आधार पर अनेक नियम बनाये हैं जिनमें एक नियम गृहस्थ मनुष्यों का प्रतिदिन पंचमहायज्ञों को करने का विधान है। इन पंचमहायज्ञों को जानकर इनको करने से मनुष्य की आत्मा की उन्नति होने सहित उसे इष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति होती है। अतः सभी मनुष्यों को पंचमहायज्ञों को जानकर उनका सेवन करना चाहिये। इनकी महत्ता के कारण ही महाराज मनु ने आदिकाल में ही घोषणा की थी सभी मनुष्य पंचमहायज्ञों को करें और जो न करें उन्हें सभी द्विजों के कार्यों से पृथक कर देना चाहिये। पंचमहायज्ञों को करने से मनुष्य ईश्वर को प्राप्त होकर अपनी अविद्या व दुःखों को दूर करने में सफल होता है। देवयज्ञ अग्निहोत्र करने से वायु व जल आदि की शुद्धि होने सहित ईश्वर की उपासना भी होती है। इसे करने से मनुष्य को स्वास्थ्य लाभ सहित अनेक आध्यात्मिक लाभ तथा उसकी कामनाओं की सिद्धि होती है। माता-पिता की सेवा करने से उसे उनका आशीर्वाद मिलता है तथा उनके पुत्र व पुत्री भी वृद्धावस्था में उनकी सेवा कर उनको प्रसन्न व सन्तुष्ट रखेंगे। विद्वान अतिथियों की सेवा करने से मनुष्य के ज्ञान में वृद्धि व उनकी सभी शंकाओं का समाधान होता है। ऐसा करने से मनुष्य अन्धविश्वासों, पाखण्डों तथा कुरीतियों में नहीं फंसते। इस अतिथिसेवा-यज्ञ को करने से मनुष्य को विद्वान अतिथियों का आशीर्वाद भी मिलता है ही इष्ट कामनाओं की पूर्ति करता है। पांचवा दैनिक यज्ञ बलिवैश्वदेव-यज्ञ होता है। इसके अन्तर्गत पशु-पक्षियों को कुछ अन्न देने से हमें पुण्य प्राप्त होता है। यह पुण्य कार्य मनुष्य के जीवन में सभी क्षेत्रों में सुखदायक होता है। अतः पंचमहायज्ञों को हम सभी को करना चाहिये और इनसे मिलने वाले लाभों को प्राप्त करना चाहिये।

हम अपनी आंखों से जिस संसार को देखते हैं इसमें जड़ और चेतन दो प्रकार के पदार्थ हैं। संसार में कुल तीन ही पदार्थ हैं जो ईश्वर, जीव व प्रकृति कहलाते हैं। ईश्वर सब जगत के ऐश्वर्य का स्वामी होने से ईश्वर कहलाता है। ईश्वर ने ही त्रिगुणात्मक कारण प्रकृति को कार्य सृष्टि में परिणत कर सभी जीवों को जन्म-मरण देकर सुख व मोक्ष प्राप्ति के अवसर दिये हैं। दूसरा चेतन पदार्थ है जीव जो अनादि, नित्य, अविनाशी, अमर, अल्प परिणाम, अल्पज्ञ, एकदेशी, ससीम, जन्म - मरणधर्मा, शुभाशुभ कर्मों को करनेवाला तथा ईश्वर की व्यवस्था से उनके सुख व दुःखरूपी फलों को भोगने वाला है। मनुष्य योनि में जीवात्मा का कर्तव्य है कि वह ईश्वरीय ज्ञान वेदों का अध्ययन करे और वेदविहित कर्तव्य-कर्मों को करते हुए ईश्वर के ज्ञान को प्राप्त होकर उसके साक्षात्कार सहित सुख व मोक्ष आदि को प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहे। मनुष्य वेद विहित कर्मों को करता है तो उसे पाप-पुण्य बराबर होने व पुण्य अधिक होने पर मनुष्य का जन्म मिलता है। मनुष्य जितने अधिक पुण्यकर्मों को करेगा उतना ही उसे श्रेष्ठ परिवेश में मनुष्य का जन्म मिलेगा और उसके पुण्यों के अनुरूप ही उसे परजन्म में सुखों की प्राप्ति होती है। दर्शन ग्रन्थों में इसका तर्क एवं युक्तियों सहित विवेचन किया गया है। हमें दर्शनों व उपनिषदों के ज्ञान का लाभ प्राप्त करने के लिये इन ग्रन्थों का भी अध्ययन करना चाहिये। ऐसा करने से जीवात्मा के स्वरूप तथा जन्म-मरण विषयक हमारी सभी शंकाओं का समाधान हो सकेगा।

ईश्वर का सत्यस्वरूप भी वेद व वैदिक साहित्य से ही जाना जाता है। ''सत्यार्थप्रकाश'' ग्रन्थ वैदिक साहित्य का प्रमुख ग्रन्थ है। इसके अध्ययन से जीवात्मा, परमात्मा तथा प्रकृति के सत्यस्वरूप का ज्ञान होता है। ईश्वर को एक दो वाक्य में जानना व बताना हो तो आर्यसमाज के दूसरे नियम का उपयोग कर उसे प्रस्तुत किया जा सकता है। नियम में ईश्वर क्या व कैसा है प्रश्न का उत्तर दिया गया है। नियम है 'ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी (चाहिये) योग्य है।' हमें ईश्वर के स्वाध्याय, चिन्तन, मनन, ध्यान, सन्ध्या व उपासना के द्वारा ईश्वर के इसी सत्यस्वरूप को प्राप्त होना है। इसे प्राप्त कर लेने पर ही मनुष्य-जीवन सफल होता है और मनुष्य जन्म व मरण के बन्धनों से छूट कर दीर्घकाल तक मोक्ष अवस्था को प्राप्त होता है वा हो सकता है। मोक्ष का वर्णन सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ के नवम् समुल्लास में हुआ है। इसका सभी जिज्ञासुओं को अध्ययन करना चाहिये। मोक्ष जीवात्मा के लिए आनन्द की अवस्था है जिसकी अवधि ३१ नील १० खरब ४० अरब वर्ष है। इस अवधि में जीवात्मा जन्म-मरण से रहित होकर दुःखों से सर्वथा पृथक रहता है। यही हम सब जीवात्माओं का लक्ष्य है। हमें मोक्ष प्राप्ति के पथ पर ही अपने जीवनों को चलाने का प्रयत्न करना चाहिये। जिस प्रकार से ईश्वर, जीवात्मा, कारण व कार्य जगत सृष्टि, वेद आदि सत्य हैं उसी प्रकार वेद और ऋषियों के ग्रन्थों में वर्णित मोक्ष व मोक्ष में प्राप्त होने वाले सुखों की प्राप्ति का होना भी सत्य है। मोक्ष की अवस्था अनेक जन्म में पुण्य कर्मों का संचय तथा अपने सभी पाप कर्मों का भोग कर लेने पर प्राप्त होती है। सत्याचरण ही धर्म है और यही मोक्ष का मार्ग भी है। इस का सभी मनुष्यों को चिन्तन करना चाहिये। सत्यार्थप्रकाश सत्यासत्य विषयों के चिन्तन-मनन में सहायक है और जीवन की सभी शंकाओं व जानने योग्य विषयों पर निर्णायक ज्ञान देता है।

परमात्मा हमारा माता, पिता व आचार्य आदि है। उसने अपनी प्रजा जीवों के लिये ही इस संसार की रचना की और इसका पालन कर रहा है। इस कारण से वह हमारी माता व पिता दोनो है। वेदज्ञान देने सहित ऋषियों व परम्परा से हमें वेदज्ञान उपलब्ध कराने तथा आत्मा में उपस्थित रहकर हमें कर्तव्यों की प्रेरणा करने से वह हमारा आचार्य व गुरु भी है। हमें ईश्वर के साथ अपने इन सम्बन्धों को जानकर उन्हें निभाना चाहिये और ईश्वर के समान ही उसके जैसा उसका योग्य पुत्र व शिष्य बनने का प्रयत्न करना चाहिये। हमें जन्म व मृत्यु को देखकर न तो अत्यधिक प्रसन्न होना है और न ही अपनी व अपने प्रियजनों की मृत्यु को देखकर निराश व दुःखी होना है। ईश्वर की व्यवस्था को जानकर हमें उसमें विश्वास कर अज्ञानवतावश होने वाले दुःखों को समझना व उनसे ऊपर ऊठना है। गीता में कहा है 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च' अर्थात् जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु का होना निश्चित है और जिसकी मृत्यु होती है उसका जन्म होना भी ध्रुव, अटल व निश्चित है।

जन्म व मरण का यह नियम हम सभी जीवों पर लागू होता है और सबके जीवन में जन्म व मृत्यु का समय अवश्य ही आना है। जब हमें पता है कि हमारी व हमारे सभी सगे सम्बन्धियों की मृत्यु होनी है तो हमें मृत्यु आने व होने पर क्लेश व दुःखी नहीं होना चाहिये। हमें जानना चाहिये कि मृत्यु के समय जीवात्मा शरीर से निकल कर ईश्वर की प्रेरणा से आकाश व वायुमण्डल में रहता है। ईश्वर उस मृतक जीवात्मा का उसके कर्मानुसार माता-पिता का चयन कर उनके द्वारा पुनर्जन्म प्रदान करते हैं। यह अटल सत्य व सिद्धान्त है। वस्तुतः सभी के साथ ऐसा ही होना है। मृत्यु होने पर मृतक आत्मा के अपने परिवारजनों से सभी सम्बन्ध टूट जाते हैं। मृतक आत्मा को मृत्यु हो जाने पर अपने पूर्व सम्बन्धों व परिजनों का किंचित भी ज्ञान नहीं रहता। मृत्यु के बाद लगभग एक वर्ष पुनर्जन्म होने में लगता है। मृत्यु होने पर नया शरीर मिलता है। पुराने शरीर के मस्तिष्क, मन व बुद्धि आदि अंग होते हैं वह शरीर सहित सभी नष्ट हो जाते हैं। पुराना शरीर छूट जाने पर नया शरीर मिलता है जो १२ वर्ष तक बाल व किशोर अवस्था में होता है। अतः पुनर्जन्म में पूर्वजन्म की स्मृतियां विस्मृत हो जाती हैं। ऐसा होना मनुष्य के लिए लाभकारी ही होता है। योगियों को इनका साक्षात्कार होना सम्भव होता है। अतः जिन परिवारों में कभी वियोग की कोई घटना हो तो ईश्वर के इस जन्म-मरण-पुनर्जन्म की व्यवस्था को विचार कर विषाद से रहित रहना चाहिये। हर स्थिति में ईश्वर की उपासना व भक्ति में संलग्न रहना चाहिये। स्वाध्याय करने में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये। दुःख कितना ही बड़ा क्यों न हो व वह कैसा भी हो, समय के साथ उसमें न्यूनता आती जाती है। कुछ समय बाद तो पीड़ित मनुष्य उस दुःख को भूल ही जाता है। अतः जब कभी कोई वियोग आदि का दुःख आये तो मनुष्य को उससे विचलित नहीं होना चाहिये और वेद व वैदिक ग्रन्थों के स्वाध्याय सहित ईश्वर के 'ओ३म्' नाम के जप सहित गायत्री मन्त्र आदि के जप से अपने मन व आत्मा को शुद्ध कर उन्हें ईश्वर में लगाना चाहिये। इससे मनुष्य व परिवारजन अपने किसी प्रिय के वियोग के दुःख को कम व नष्ट कर सकते हैं।

हम सब को जीवन में परमात्मा और आत्मा आदि का सत्य ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। परमात्मा हमारे माता-पिता, आचार्य, मित्र, सखा, बन्धु, हितैषी, सुखदाता तथा प्रेरणाओं के स्रोत है। उनकी शरण में जाकर सबको उनकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना व भक्ति करनी चाहिये। इसी से हमारा कल्याण होगा।

●●●

पृष्ठ.....३ का शेष

अध्याय ५६

इस मणि को लेकर आगे क्या-क्या काण्ड घटित हुए, उन्हें न लिखकर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ये सब घटनायें भागवतकार की ही कल्पनायें हैं । 'महाभारत में इन कथाओं का कोई संकेत तक नहीं है। बंकिम ने इसपर टिप्पणी करते हुए लिखा है - ''इस स्यमन्तक मणि की कथा में भी कृष्ण की न्यायपरता, सत्यप्रतिज्ञता, और कार्यदक्षता ही अच्छी तरह से प्रकट होती है, पर यह सत्यमूलक नहीं जान पड़ती।'' (कृष्ण-चरित्र, प० २२९) राम का समकालीन जाम्बवान कृष्ण के समय में भी विद्यमान था, इसे कोई भी विचारशील व्यक्ति स्वीकार नहीं करेगा। यदि दुर्जन-तोष-न्याय से यह मान भी लिया जाय कि जाम्बवान् नामक रीछ कृष्ण के समय में भी था, तो निश्चय ही उसकी पुत्री जाम्बवन्ती भी रीछनी ही होगी, मानवी नहीं । फिर रीछनी से कृष्ण का विवाह कैसे हुआ ? अतः जाम्बवन्ती से कृष्ण का विवाह और उसी के कारण आगे चलकर सत्यभामा के साथ हुआ कृष्ण का विवाह भी पुराणकार की कल्पना ही है।

कृष्ण के अन्य विवाहों के वर्णन के लिए भागवतकार ने एक पृथक अध्याय ही लिखा है।(भागवत, दशम स्कन्ध, उ०, अध्याय ५८) इन कथाओं की विस्तृत आलोचना की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे भी सत्यभामा-जाम्बवन्ती की कथाओं जैसी ही हैं। स्थालीपुलाक-न्याय से उनकी असत्यता का भी ज्ञान हो सकता है।

कृष्ण ने प्राग्ज्योतिषपुर के राजा नरकासुर (अपर नाम भौमासुर) को मारकर जिन १६ हजार कन्याओं से विवाह किया, उसका वर्णन 'भागवत' के एक अन्य अध्याय में है।(अध्याय ५९) नरकासुर के अत्याचारों की शिकायत लेकर इन्द्र स्वयं कृष्ण की सेवा में द्वारिका आया। कृष्ण ने उसे वचन दिया कि वे स्वयं प्राग्ज्योतिषपुर जायेंगे और नरक का वध करेंगे। इस प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए कृष्ण सत्यभामा सहित वहाँ पहुँचे । सर्वप्रथम उनका युद्ध नरक के 'मुर' नामक सेनापति से हुआ, जिसे मार डालने के कारण वे 'मुरारि' नाम से विख्यात हुए। तत्पश्चात् नरकासुर को मारकर उन्होंने उसके अन्तःपुर में बंदी १६ हजार राजकुमारियों को मुक्त किया तथा उन्हें पत्नी-रूप में ग्रहण किया।(३)

बंकिम के अनुसार यह सारी घटना अलौकिक और मिथ्या है। उनकी युक्ति यह है कि कृष्ण का समकालीन प्राग्ज्योतिषपुर का राजा नरकासुर नहीं, बल्कि भगदत्त था जो कुरुक्षेत्र के युद्ध में अर्जुन के हाथों मारा गया। 'महाभारत' से इसकी पुष्टि भी होती है। कृष्ण का १६००० रानियों से विवाह तो सर्वथा चमत्कारपूर्ण मिथ्या कथा है।(४)

- - ध्यान दें - -

३. विष्णुपुराण, ५।।३१य नरकासुर विष्णु का पृथिवी में उत्पन्न किया पुत्र था। उसकी १६००० स्त्रियों से विष्णु के अवतार कृष्ण का विवाह करना स्व पुत्र-वधुओं से विवाह के तुल्य ही है। -लेखक

४. कृष्ण-चरित्र, पृ० २२१

पुराणों के नवीन व्याख्याकार कभी-कभी इन कपोल-कल्पित कथाओं का स्व-ऊहा के बल पर विचित्र समाधान तलाश करने का यत्न करते हैं। उदाहरणार्थ स्व० पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने १६००० कन्याओं से विवाह करने के उल्लेख को एक विचित्र आयाम दिया है।(आर्यमित्र, २६ जून, १९५२ के अंक में प्रकाशित 'कृष्ण का चरित्र') उनके अनुसार, नरकासुर ने १६ हजार राजकन्याओं का विभिन्न राजकुलों से अपहरण किया था तथा अपनी वासना-पूर्ति के लिए उन्हें अपने अन्तःपुर में लाकर रखा था । कृष्ण ने नरकासुर को मारकर उन राजकन्याओं को उस व्यभिचार-लम्पट के कारागार से मुक्त किया तथा एक दुराचारी व्यक्ति के अधिकार में रही इन नारियों को स्व-अन्तःपुर में स्थान देकर अबलाओं के उद्धार तथा संरक्षण का एक नवीन आदर्श उपस्थित किया। हम पूछ सकते हैं कि वह कौन-सा आदर्श था, जिसे कृष्ण ने १६००० कन्याओं को पत्नी-रूप में स्वीकार कर उपस्थित किया ? वादी कह सकता है कि कृष्ण ने अपने उस कृत्य के द्वारा बलात् अपहृत स्त्रियों को समाज में पुनः कैसे स्वीकार किया जा सकता है, इस प्रश्न का उत्तर स्व-उदाहरण देकर प्रस्तुत किया है। जिस समय पं० सातवलेकर जी ने कृष्ण के इस बहु-पत्नीवाद के औचित्य को सिद्ध करने के लिए कलम उठाई थी, उस समय देश का विभाजन हुआ ही था और पाकिस्तान में कुछ समय तक मुसलमानों के अधिकार में रहने के पश्चात् पुनः भारत में लाई गई उन हिन्दू स्त्रियों के भविष्य को लेकर विभिन्न अटकलें लगाई जा रही थीं । जो स्त्रियाँ स्वल्पकाल के लिए भी विधर्मियों के घर में रह चुकी थीं उन्हें कट्टरपंथी हिन्दू स्वपरिवार में ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं थे। ऐसी महिलाओं का भविष्य अंधकारपूर्ण ही था । संकीर्ण समाज उन्हें अपना अंग बनाने के लिए तत्पर नहीं था। ऐसी स्थिति में सातवलेकर जी के समक्ष कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित नरकासुर द्वारा अपहृत १६ हजार राजकन्याओं के उद्धार का कथानक इस समस्या का समाधान करता हुआ-सा प्रतीत हुआ। वे मानो कृष्ण का ही दृष्टान्त देकर कहते हैं कि है कोई माई का लाल, जो सामने आये और विधर्मियों के घरों में रहीं तथा बलात् दूषित की गई इन नारियों से कृष्ण के समान ही विवाह कर ले ? अपहृताओं की समस्या का यह विचित्र समाधान है! थोड़ी देर के लिए यह मान भी लें कि नरकासुर के अत्याचारों से पीड़ित एवं सन्तप्त इन दुःखी नारियों को पुनः ग्रहण करनेवाला उस समय कोई नहीं था, परन्तु कृष्ण के इस तथाकथित कृत्य के औचित्य को भी कैसे सिद्ध किया जा सकता है कि अबलाओं को शरण देने और सुरक्षा प्रदान करने का एकमात्र तरीका यही है कि उन्हें अपनी पत्नी बना लिया जाय ? आर्य-जाति में एकपत्नी-व्रत को सदा ही आदर्श माना गया है । बहुपत्नी-प्रथा हमारी संस्कृति में हेय एवं त्याज्य समझी गई है। अतः कृष्ण का १६००० राजकुमारियों से विवाह कोई सुसंस्कृत आदर्श नहीं है। सातवलेकर जी की दृष्टि से ही यदि अपहता कन्याओं की समस्या की गुरुता को सोचे तो उसका एक व्यावहारिक समाधान यह भी हो सकता है कि अत्याचारियों की कारागार से मुक्त की गई ऐसी नारियों को सामूहिक रूप से किसी आश्रम में रक्खा जा सकता है, परन्तु यह तो सर्वथा अव्यावहारिक तथा आचार-शास्त्र की सर्व-स्वीकृत मान्यताओं के विपरीत ही होता कि कोई व्यक्ति पाकिस्तान से लौटाकर लाई गई ३० हजार स्त्रियों को अपनी भोग्या बनाकर अपने घर में रखने की बात करे। हम नहीं समझते कि पुराणों की मिथ्या कथाओं को औचित्य-सिद्धि के लिए इस प्रकार की मनमानी कल्पनायें क्यों की जाती हैं। ऐसी व्याख्याओं से न तो व्याख्याकारों का ही गौरव बढ़ता है और न उन ग्रंथों की ही विश्वसनीयता प्रकट होती है, जिनमें ऐसी कथायें लिखी गई हैं।

इसी कथा से सम्बन्धित पारिजात-हरण की कथा है, जिसका उल्लेख 'भागवत' तथा 'विष्णुपुराण' में है ।(भागवत, दशम स्कन्ध, उ०, अध्याय ५९ विष्णुपुराण, ५।३०) नरकासुर को मारकर जब कृष्ण सत्यभामा के साथ द्वारिका लौट रहे थे तो स्वर्ग के नन्दनकानन में खिले पारिजात वृक्ष को देखकर सत्यभामा का मन चंचल हो उठा । वह उसे पाने के लिए लालायित हुई। कृष्ण ने भी अपनी प्रियतमा की इच्छा पूरी करने के लिए उसे उखाड़ लिया । कृष्ण की इस धृष्टता को देखकर नंदन-कानन के स्वामी इन्द्र को बड़ा क्रोध आया और वह देवताओं की स्वत्व-रक्षा के निमित्त कृष्ण से भिड़ गया। खैर, युद्ध का तो जो अन्त होना था, वही हुआ। इन्द्र पराजित हुए तथा उन्होंने विवश होकर पारिजात वृक्ष कृष्ण को दे दिया। अब इस वृक्ष से द्वारिका की शोभा बढ़ेगी, यह जानकर कृष्ण उसे अपने नगर में ले आये । कथा में अलौकिक तत्त्वों की ही प्रधानता है, अतः वह हमारे विवेचन-क्षेत्र में नहीं आती।

कृष्ण पर लगाये जानेवाले बहु-विवाहों के आरोपों की समालोचना बंकिमचंद्र ने एक पृथक् अध्याय लिखकर अत्यन्त प्रामाणिक एवं युक्तिसंगत रूप में की है। (कृष्ण-चरित्र, पृ० २३०-२४५) 'विष्णुपुराण', 'हरिवंश', 'महाभारत' आदि ग्रंथों में एतद्-विषयक जो-जो उल्लेख मिलते हैं उन सबको एकत्र किया है तथा बताया है कि ये वर्णन परस्पर-विरुद्ध होने के कारण अनैतिहासिक एवं मिथ्या हैं । विभिन्न पुराणों में जिन आठ पट्ट-महिषियों का नामोल्लेख हुआ है उनमें भी कोई संगति तथा समानता नहीं है। कहीं कोई नाम बढ़ गया है, कहीं कोई छूट गया है। नरकासुर के अन्तःपुर से छुड़ाई गई १६००० रानियों को भी बंकिम मनगढन्त मानते हैं।(कृष्ण-चरित्र, पृ० २३०) 'विष्णुपुराण' (अंश ४, अध्याय १५, श्लोक १६) के अनुसार कृष्ण की सब स्त्रियों से १,८०,००० पुत्र हुए।(५) कृष्ण की आयु इसी पुराण में १२५ वर्ष बताई गई है। बंकिम ने गणित करके दिखाया है कि इस हिसाब से कृष्ण के साल-भर में १४४० तथा एक दिन में ४ लड़के जन्म लेते थे। यहाँ यही समझना होगा कि कृष्ण की इच्छा से ही उनकी पत्नियाँ पुत्र प्रसव करती थीं।(कृष्ण-चरित्र, पृ० २३१)

- - ध्यान दें - -

५. ब्रह्मपुराण के अनुसार कृष्ण के इन पुत्रों की संस्था ८८,८०० थी। पुराणों के परस्पर-विरोध का एक उदाहरण यह भी है। -लेखक

जाम्बवन्ती, सत्यभामा, लक्ष्मणा आदि रानियों की कथाओं को मिथ्या सिद्ध करने के लिए बंकिम बाबू ने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक अनेक नवीन तर्क की उद्भावना की है। इस समग्र विवेचन के पश्चात् उन्होंने जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। वे लिखते हैं महाभारत के मौलिक अंश से तो यही प्रमाणित होता है कि रुक्मिणी के सिवा कृष्ण के और कोई स्त्री नहीं थी। रुक्मिणी की ही सन्तान राजगद्दी पर बैठी, और किसी के वंश का पता नहीं। इन कारणों से कृष्ण के एक से अधिक स्त्री होने में पूरा संदेह है।''(कृष्ण-चरित्, पृ० २४३)

इस प्रकार कृष्ण के बहुविवाहों का प्रमाण-पुरस्सर खण्डन करने पर भी बंकिम की स्थिति संदेहास्पद है क्योंकि वे एक-पत्नीव्रत के आदर्श को ईसाई आदर्श मानते हैं परन्तु बहुविवाह के समर्थन में भी कोई दलील न दे सकना इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि वे अपने कथन से पूर्णतया संतुष्ट हैं। हाँ, इस सम्बन्ध में उनकी टिप्पणियाँ महत्त्वपूर्ण हैं, जिन्हें उद्धत करके ही हम इस प्रसंग को समाप्त करेंगे।

कृष्ण ने एक से अधिक विवाह किये, इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिला। यदि किये ही हों तो क्यों किये, इसका भी विश्वास-योग्य वृत्तांत कहीं नहीं मिला । स्यमन्तक मणि के साथ जैसी स्त्रियाँ उन्हें मिलीं वह नानी की कहानी के उपयुक्त है। और नरकासुर की सोलह हजार रानियाँ तो नानी की कहानियों की भी नानी है। ये कहानियाँ सुनकर हम प्रसन्न हो सकते हैं, पर विश्वास नहीं कर सकते।''(कृष्ण-चरित्र, पृ० २४५)

आर्य समाज राजाजीपुरम्, लखनऊ का वेद प्रचार कार्यक्रम एवं वार्षिकोत्सव व श्राद्ध दिवस समारोह

आर्य समाज राजाजीपुरम्, लखनऊ का वेद प्रचार कार्यक्रम एवं वार्षिकोत्सव व श्राद्ध दिवस समारोह दिनांक २ अक्टूबर, से ८ अक्टूबर, २०२३ तक बड़े हर्षोल्लास के साथ धूमधाम से मनाया जायेगा।

कार्यक्रम में डॉ. वेदपाल जी संरक्षक परोकारिणी सभा अजमेर, पं. सौमित्र अंगिरस भजनोपदेशक, डॉ. प्रतिज्ञा आर्या आदि पधार रहे हैं।

समारोह में प्रातः ७:३० बजे से ११:२० बजे तक ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भजनोपदेश व प्रवचन आदि सायं काल ५:३० से ८:३० बजे तक ब्रह्मयज्ञ, भजनोपदेश व प्रवचन आदि होंगे। दिनांक ८ अक्टूबर को श्री मदन लाल बतरा व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती उषा बतरा का श्राद्ध सम्मान होगा।

सभी धर्म प्रेमी बन्धु बान्धवों से निवेदन है कि इस यज्ञ, भजन व वेदोपदेश की त्रिवेणी में ज्ञान स्नान कर, आध्यात्मिक का आनन्द लें व कार्यक्रम को सफल बनावें।

आर्य समाज बिसवाँ सीतापुर का वार्षिकोत्सव

आर्य समाज बिसवाँ, जनपद सीतापुर का ६८ वार्षिकोत्सव दिनांक ३, ४, व ५ अक्टूबर, २०२३ को समारोह पूर्वक मनाया जायेगा।

समारोह में आचार्य चन्द्रदेव शास्त्री, मथुरा, श्री अनिल दत्त, मेरठ, पं. नेम प्रकाश आर्य व आचार्य विमल किशोर आर्य, लखनऊ से पधार रहे हैं।

कार्यक्रम में प्रातः ६:०० बजे से १२:०० बजे तक यज्ञ व प्रवचन तथा रात्रि ७:३० से १०:३० बजे तक उपदेश व भजन होंगे। इसके अलावा डॉ. सनोज महोली निःशुल्क आयुर्वेदिक चिकित्सा व परामर्श हेतु उपलब्ध रहेंगे। पं. नेम प्रकाश आर्य जी का धनुर्विद्या का अद्भुत प्रदर्शन दिनांक ५ अक्टूबर, २०२३ रात्रि ६:०० बजे होगा।

अतः सभी बन्धु-बान्धवों से निवेदन है कि अपनी आध्यात्मिक पिपाशा व जिज्ञासा के समाधान हेतु तथा समारोह की सफलता में अपनी गरिमामई उपस्थिति प्रदान करें।

प्राचीन साहित्य में आर्य शब्द का उल्लेख

१) आचार्य यास्क

आर्य शब्द की व्याख्या करते हुए यास्काचार्य ने लिखा है-

'आर्य ईश्वरपुत्रः।' —निरुक्त अ० ६ खण्ड २६

अर्थात् आर्य ईश्वर के पुत्र का नाम है।

२) ऋग्वेद

वेद में ईश्वर कहता है कि—

अहं भूमिमददामार्यायार्या। ऋ० ४.२६.२

मैं इस भूमि का राज्य आर्यों के लिए प्रदान करता हूँ।

३) विदुरनीति

(क) विदुरनीति में आर्य के विषय में निम्न श्लोक पाये जाते हैं—

आर्यकर्माणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते।

हितं च नाभ्यसूचन्ति पण्डिता भरतर्षभ।। —विदुरनीति १.३०

अर्थात् भरतकुलभूषण! पण्डितजन श्रेष्ठ कर्मों में रुचि रखते हैं, उन्नति के कार्य करते हैं तथा भलाई करनेवालों में दोष नहीं निकालते हैं।

(ख) न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति।

न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्याः।। —विदुरनीति १.११७

जो शान्त हुए वैर को पुनः प्रज्वलित नहीं करता, जो कभी घमण्ड नहीं करता और न कभी निराश होता है तथा दुर्गति को प्राप्त होने पर भी जो कभी बुरा कार्य नहीं करता उस उत्तम आचरणवाले पुरुष को सर्वश्रेष्ठ आर्य कहते हैं।

(ग) न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति विषादी।

दत्त्वा न पपश्चात्कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः।। —विदुरनीति १.११८

अर्थात् जो अपने सुख में कभी प्रसन्न नहीं होता और न दूसरे के दुःख में कभी हर्षित होता है, दान देकर पीछे पछताता नहीं है, वह सत्पुरुष 'आर्य' कहलाता है।

४) महर्षि वेदव्यास

महर्षि वेदव्यास ने निम्न आठ गुणों से युक्त व्यक्ति को आर्य कहा है—

ज्ञानी तुष्टश्च दान्तश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः।

दाता दयालुर्नम्रश्च स्यादार्यो ह्यष्टभिर्गुणैः।।

अर्थात् जो ज्ञानी हो, सदा सन्तुष्ट रहनेवाला हो, मन को वश में करनेवाला हो, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, दानी, दयालु और नम्र हो, वह आर्य कहलाता है।

५) महाभारत

(क) लोको ह्यार्यगुणानेव भूयिष्ठं तु प्रशंसति।। —१२२.२

वेदव्यास जी मैत्रेय से कहते हैं संसार के लोग आर्य गुणवाले (उत्तम गुणवाले) पुरुष की ही अधिक प्रशंसा करते हैं।

(ख) आर्यरूपसमाचारं चरन्तं कृत के पथि।

सुवर्णमन्यवर्ण वा स्वशीलं शास्ति निश्चये।। —४८.४५

जो कृत्रिम मार्ग का आश्रय लेकर आर्यों (श्रेष्ठ पुरुषों) के अनुरूप आचरण करता है, वह खरा सोना है या काँच, इसका निश्चय करते समय उसका स्वभाव ही सब-कुछ बता देता है।

(ग) नूनं मित्रमुखः शत्रुः कश्चिदार्यवचाचरन्।

वंचयित्वा गतस्त्वां वै तेनासि हरिणं कृशः।। —१२४.१७

एक विद्वान् किसी की दुर्बलता का कारण बतलाते हुए कहता है निश्चय ही कोई शत्रु मुँह से मित्रता की बात करता हुआ आया, आर्य (श्रेष्ठ) पुरुष के समान बर्ताव करने लगा और तुम्हें ठगकर चला गया, इसलिए तुम दुर्बल और सफेद होते जा रहे हो।

६) गीता

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने जब देखा कि वीर अर्जुन अपने क्षात्र धर्म के आदर्श से च्युत होकर मोह में फँस रहा है तो उसको सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं, विषमे समुपस्थितम्।

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यम्, अकीर्तिकरमर्जुन।।

अर्थात् हे अर्जुन! यह अनार्यों व दुर्जनों द्वारा सेवित, नरक में ले-जानेवाला, अपयश करानेवाला पाप इस युद्ध-समय में तुझे कैसे प्राप्त हो गया?

७) वाल्मीकि रामायण

(क) सीताजी श्रीराम से बोली—

आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः।

आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति।।

—वा० रामा० आर० ४३.९

हे आर्यपुत्र! यह परम मनोहर मृग मेरे मन को हर रहा है। हे महाबाहो! तुम इसे पकड़ लाओ! मैं इसके साथ खेला करूँगी।

कैकेयी ने जब श्रीराम को वनवास भेजने की माँग की तो राजा दशरथ ने उसके लिए 'अनार्या' शब्द का अनेक बार रामायण के अनुसार प्रयोग किया—

(ख) मृते मयि गते रामे, वनं मनुजपुङ्गवे।

हन्तानार्ये ममामित्रे सकामा सुखिनी भव।।

—अयोध्या काण्ड १३.५

स्वयं वाल्मीकि ने भी कैकेयी की इस अनार्योचित बुरी माँग के लिए उसे अनार्या कहा है।

(ग) तदप्रियमनार्याया वचनं दारुणोपमम्।

श्रुत्वा गतव्ययो रामः, कैकेयीं वाक्यमब्रवीत्।।

—अयोध्याकाण्ड १९.१९

प्रारम्भ में श्रीराम के उत्तम गुणों का वर्णन करते हुए वाल्मीकि रामायण में नारद मुनि ने कहा है।

(घ) सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।

आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः।।

—बालकाण्ड १.१६

अर्थात् श्रीराम आर्य, धर्मात्मा, सदाचारी, सबको समान दृष्टि से देखनेवाले और चन्द्र की तरह प्रिय दर्शनवाले थे।

८) किसी नीतिकार ने कहा है—

प्रायः कन्दुकपाते नोत्पतत्यार्यः पतन्नपि।

तथा त्वनार्षः पतति, मृत्पिण्डपतनं यथा।।

अर्थात् आर्य पाप से च्युत होने पर भी गेन्द के गिरने के समान शीघ्र ऊपर उठ जाता है, अर्थात् पतन से अपने-आप को बचा लेता है। इसके विपरीत अनार्य पतित होता है तो मिट्टी के ढेले के गिरने के समान फिर कभी नहीं उठता, अपना उद्धार नहीं करता।

९) चाणक्य नीति

अभ्यासाद् धार्यते विद्या, कुलं शीलेन धार्यते।

गुणेन ज्ञायते त्वार्यः, कोपो नेत्रेण गम्यते।। —चा० ५.८

अर्थात् सतत अभ्यास से विद्या प्राप्त की जाती है। कुल उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव से स्थिर होता है, आर्य श्रेष्ठ मनुष्य गुणों के द्वारा जाना जाता है और क्रोध नेत्रों से जाना जाता है।

१०) वसिष्ठस्मृति में कहा है कि—

कर्तव्यमाचरन् कार्यम्, अकर्तव्यमनाचरन्।

तिष्ठति प्राचारे, स तु आर्य इति स्मृतः।।

अर्थात् आर्य वह कहलाता है जो कर्तृतव्य कर्म का सदा आचरण करता और अकर्तृतव्य कर्म अर्थात् पापादि से दूर रहता हो और जो पूर्ण सदाचारी हो।

११) प्राचीन कोष में

संस्कृत के शब्दकल्पद्रुम, वाचस्पत्य, बृहदभिधानादि कोषों में आर्य शब्द के निम्न अर्थ पाये जाते हैं—

आर्यः पूज्यः, श्रेष्ठः, धार्मिकः, धर्मशीलः, मान्यः, उदारचरितः, शान्तचित्तः, न्यायपथावलम्बी, सततं कर्तव्य-कर्मानुष्ठाता यथोक्तम्।

अर्थात् आर्य का अर्थ सद्गुणों के कारण पूजनीय, श्रेष्ठ, धर्मात्मा, सदा धर्मयुक्त स्वभाव और आचरणवाला, माननीय, जातिभेद, वर्ण वा रङ्गभेद आदि संकुचित भावनाओं का परित्याग करके जो उदार चरित्रवाला है, जिसके अन्दर संकीर्णता नहीं है, ईश्वरभक्ति तथा भगवान् में पूर्ण विश्वास के कारण जिसका चित्त सदा शान्त रहता है, जो न्याय के मार्ग का सदा अवलम्बन करता और कभी अधर्म में प्रवृत्त नहीं होता, जो कर्तृतव्य कर्म का सदा अनुष्ठान करता है।

१२) अमरकोष में

महाकुलीनार्यसभ्यसज्जनसाधवः।

—अमरकोष २.७.३

जो आकृति-प्रकृति, सभ्यता-शिष्टता, धर्म-कर्म, ज्ञान-विज्ञान, आचार-विचार तथा शीलस्वभाव में सर्वश्रेष्ठ हो उसे "आर्य" कहते हैं।

१३) आर्यवृत्त (गौतमधर्मसूत्र १९.६९) सदाचार का अर्थ में 'आर्य' शब्द है।

१४) कौटिल्य अर्थशास्त्र

व्यवस्थितार्यमर्यादः, तवर्णाश्रमस्थितिः।

आर्य मर्यादाओं को जो व्यवस्थित कर सके और वर्णाश्रम धर्म का स्थापन कर सके वह राज्याधिकारी है।

१५) धम्मपद में

(क) अरियप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पण्डितो।

पण्डित जन सदा आर्यों के बतलाए धर्म में रमण करता है।

(ख) न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति।

अहिंसा सब्ब पाणानं, अरियोति पवच्चति।। —२७०.१५

अर्थात् प्राणियों की हिंसा करने से कोई आर्य नहीं होता। सभी प्राणियों की अहिंसा से मनुष्य को आर्य-श्रेष्ठ धर्मात्मा वा सदाचारी कहा जाता है।

(ग) पारसियों और जैन मतावलम्बियों में भी आर्य शब्द को श्रेष्ठ पुरुषों के लिए प्रयुक्त किया गया है। जैनों के तत्त्वार्थ सूत्र अ० ३ में 'आर्याम्लेच्छाश्च' इत्यादि सूत्र पाये जाते हैं जिनमें श्रेष्ठ पुरुषों को आर्य के नाम से स्मरण किया गया है। जैनों में साध्वियाँ अभी तक आर्या वा आरजा कहलाती है। श्री रतनचन्द जैनत अर्धमागधीकोष के भाग २ पृ० ८२ में आरिय वा आर्य का अर्थ पवित्र, विशुद्ध, श्रेष्ठ, पापरहित और भ्यही पद Civilisation दिया है।

१६) जिन्दावस्ता में आर्य शब्द

पारसियों के मान्य धर्मग्रन्थ जिन्दअवस्ता में श्रेष्ठ पुरुषों के लिए आर्य शब्द का सैकड़ों बार प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ-जिन्दावस्ता के भाग सिरोजह १.२५ में लिखा है कि आर्यों की प्रतिष्ठा में जिन्हें मज्दा (परमेश्वर) ने बनाया। सिरोजह २.९ में लिखा है 'हम आर्यों के सम्मानार्थ हवन करते हैं, जिन्हें मज्दा ने बनाया है।

अस्तद यस्त का १८वाँ अध्याय आर्यों की वीरता से भरा हुआ है, उसके प्रारम्भिक श्लोक का अनुवाद इस प्रकार है। अहर मज्दा ने स्पितामा जरदुश्त से कहा, "मैंने आर्यों को भोजन, पशुसमूह, धन, प्रतिष्ठा, ज्ञान-भण्डार और द्रव्यराशि से सम्पन्न किया है जिससे वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

—Zend Avesta Part II-P-२८३

१७) सिख मत में आर्य शब्द

(क) जो तुम सिख हमारे आरज।
देवो सीस धर्म के कारज।।

—पंथप्रकाश त ज्ञानी ज्ञानसिंह

(ख) तृतीय जो नर नारी आरज।
हो रहे निज धर्मो खारज।।
पाप कुकर्मन में अति लागे।
इस हेतु हो रहे अभागे।।

ये शब्द दशम गुरुजी ने जब बड़ा यज्ञ किया था तब कहे थे।

-साभार-आर्य वेद वरदान

आर्य समाज भोकरहेर्ड, मुजफ्फर नगर का वार्षिकोत्सव

आर्य समाज भोकरहेर्ड जनपद मुजफ्फर नगर का वार्षिकोत्सव दिनांक २४ व २५ सितम्बर, दिन-रविवार एवं सोमवार को बड़े धूमधाम के साथ मनाया जा रहा है।

समारोह के मुख्य अतिथि आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा, कुंवर देवराज पंवार, श्री विजेन्द्र सिंह, श्री सोमपाल शास्त्री, श्री मानपाल राठी, श्री सत्यवान चौधरी, आर्य रत्न गुरूदत्त आर्य, श्री सेवा राम त्यागी, विशिष्ट अतिथि योग ऋषि स्वामी करमवीर जी होंगे।

उत्सव में आमंत्रित विद्वान आचार्य रणवीर सिंह, नकुड़ सहारनपुर, स्वामी सत्यवेश जी, सुश्री कल्याणी आर्या हरियाणा आदि है।

कार्यक्रम में प्रतिदिन प्रातः ८ बजे से १० बजे तक यज्ञ, प्रातः १० बजे से १२ बजे तक भजन व प्रवचन, दोपहर ३ बजे से ६ बजे तक भजन व प्रवचन, रात्रि ८ बजे से ११ बजे तक भजन व प्रवचन होंगे।

सभी धर्म प्रेमी नर-नारियों से निवेदन है कि विद्वानों के आध्यामिक व प्रेरक प्रवचनों को सुनकर मनुष्य जीवन सार्थक करें एवं समारोह को सफल बनावें।

सम्पर्क सूत्र-९९१७५८७७७२
९९९७२६२५१८

शोक समाचार

आर्य समाज केराकत, जौनपुर के पूर्व प्रधान एवं आर्य उप प्रतिनिधि सभा के उप प्रधान श्री रमाशंकर आर्य का दिनांक १० सितम्बर, २०२३ को वाराणसी के एक निजी अस्पताल में उपचार के दौरान देहान्त हो गया। स्व. रमाशंकर आर्य महर्षि दयानन्द पूर्व मा. विद्यालय केराकत के संस्थापक सदस्य व प्रबन्धक के पद पर भी आसीन रहे।

स्व. रमाशंकर आर्य के अचानक निधन से समस्त आर्य जगत स्तब्ध व आवाक हैं जिसकी क्षतिपूर्ति असम्भव है।

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा एवं समस्त पदाधिकारीगण स्व. रमाशंकर आर्य की मृत्यु पर अपनी शोक संवेदनायें व्यक्त करते हुए, ईश्वर से दिवंगत आत्मा की सद्गति व परिजनों को यह दारुण दुःख सहने करने व शक्ति देने की प्रार्थना करते हैं।

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२२४१/५७ -आर्यमित्र ०७ एवं १४ सितम्बर, २०२३ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४/२०१६-२१ एक प्रति ₹ ५.००

आर्य मित्र

नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०६४१२६७८५७१, मंत्री-०६४१५३६५५७६, सम्पादक-६४५१८८१६७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,

.....

.....

.....

भारतीय पुनर्जागरण के अग्रणी स्वामी दयानंद

-प्रियंका द्विवेदी

स्वामी दयानंद सरस्वती एक महान समाज सुधारक और भारतीय पुनर्जागरण के अग्रणी थे। उन्होंने १८७५ में आर्य समाज की स्थापना की, जिसका उद्देश्य हिंदू धर्म को उसकी मूल शिक्षाओं और रीति-रिवाजों पर वापस लाना था। स्वामी दयानंद अपने विचारों और कार्यों से भारतीय समाज में व्यापक परिवर्तन लाए।

स्वामी दयानंद ने वेदों को हिंदू धर्म का सर्वोच्च और अंतिम स्रोत माना। उन्होंने वेदों की प्राचीनता और प्रामाणिकता को प्रमाणित करने के लिए कई तर्क दिए। उन्होंने यह भी बताया कि वेदों में ही हिंदू धर्म के सभी सिद्धांतों और मान्यताओं का समावेश है। स्वामी दयानंद ने वेदों के आधार पर एक नई शिक्षा पद्धति का भी निर्माण किया, जिसने भारत में शिक्षा के क्षेत्र में क्रांति ला दी।

आर्य समाज के माध्यम से, स्वामी दयानंद ने हिंदू समाज में कई सुधारों को लागू करने का प्रयास किया। उन्होंने जाति व्यवस्था, अंधविश्वास, बाल विवाह और सती प्रथा जैसी कुप्रथाओं का विरोध किया। उन्होंने महिलाओं के अधिकारों के लिए भी आवाज उठाई। उनके ही प्रयासों से नारी शिक्षा में जागृति आयी, स्वामी दयानंद के प्रयासों से, हिंदू समाज में कई सामाजिक और धार्मिक सुधार हुए।

उनकी महत्ता को समझते हुए वर्तमान सरकार स्वामी दयानंद जी के मिशन को पूरा करने के लिए कई कदम उठा रही है। इनमें शामिल हैं:

- वेदों के संरक्षण और प्रचार के लिए सरकार द्वारा कई योजनाएं और कार्यक्रम शुरू किए गए हैं।
- सरकार हिंदू धर्म के मूल सिद्धांतों और मान्यताओं पर आधारित शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रयास कर रही है।
- सरकार जाति व्यवस्था, अंधविश्वास, बाल विवाह और महिलाओं के खिलाफ अन्याय जैसी समस्याओं को दूर करने के लिए कार्य कर रही है।
- सरकार के इन प्रयासों से स्वामी दयानंद के आदर्शों को आगे बढ़ाने और एक अधिक समतावादी और न्यायपूर्ण समाज बनाने में मदद मिलेगी।
- यहाँ स्वामी दयानंद द्वारा समाज में लाए गए कुछ प्रमुख परिवर्तनों का उल्लेख है:
- उन्होंने वेदों के आधार पर एक नई शिक्षा पद्धति का निर्माण किया, जिसने भारत में शिक्षा के क्षेत्र में क्रांति ला दी।
- उन्होंने जाति व्यवस्था, अंधविश्वास, बाल विवाह और सती प्रथा जैसी कुप्रथाओं का विरोध किया।
- उन्होंने महिलाओं के अधिकारों के लिए आवाज उठाई। नारी शिक्षा का समर्थन किया साथ ही प्रेरित किया कि लोग अपनी घर की महिलाओं को शिक्षा देने की तरफ बढ़े.
- उन्होंने हिंदू धर्म को उसकी मूल शिक्षाओं और रीति-रिवाजों पर वापस लाने का प्रयास किया।

स्वामी दयानंद का योगदान भारतीय समाज के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने एक ऐसे समाज के निर्माण के लिए काम किया जो अधिक न्यायपूर्ण, समतावादी और धर्मनिरपेक्ष हो।

सरकार ने २०२३ में स्वामी दयानंद सरस्वती की २००वीं जन्म जयंती मनाई। इस जयंती की थीम थी "सत्य, ज्ञान, और तप"। यह थीम स्वामी दयानंद के जीवन और शिक्षाओं से प्रेरित थी। स्वामी दयानंद एक महान सामाजिक सुधारक और दार्शनिक थे। उन्होंने सत्य, ज्ञान, और तप के महत्व पर जोर दिया। उन्होंने लोगों को अंधविश्वास और रूढ़ियों से मुक्त होने के लिए प्रेरित किया।

इस जयंती के अवसर पर, सरकार ने कई कार्यक्रमों का आयोजन किया। और पूरे देश में घर घर यज्ञ हुआ इन कार्यक्रमों में व्याख्यान, प्रदर्शनियां, और सांस्कृतिक कार्यक्रम शामिल थे। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य लोगों को स्वामी दयानंद के जीवन और शिक्षाओं के बारे में जागरूक करना था।

सरकार ने इस जयंती के लिए एक विशेष वेबसाइट भी बनाई। इस वेबसाइट पर स्वामी दयानंद के जीवन और शिक्षाओं के बारे में जानकारी दी गई थी। इस वेबसाइट ने लोगों को स्वामी दयानंद के बारे में जानने और उनके विचारों को समझने का अवसर प्रदान किया।

इस अवसर पर एक कमेटी का भी गठन किया गया जिसमें देश के प्रधानमंत्री, गृहमंत्री, उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री और देश विदेश के १०० लोगों को सदस्य नामित किया गया जिसमें आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश प्रधान देवेंद्र पाल वर्मा जी को भी शामिल किया गया यह बड़े गौरव की बात है यह कमेटी स्वामी दयानंद जी के विचारों को कार्यक्रम के माध्यम से जन जन तक पहुंचाने का कार्य करेगी

स्वामी दयानंद सरस्वती जी के विचार आज भी प्रासंगिक हैं। उनकी शिक्षाएं हमें एक बेहतर समाज बनाने में मदद करती हैं।

हीरक जयन्ती समारोह

(आर्य गुरुकुल यज्ञ तीर्थ, एटा)

आर्ष गुरुकुल यज्ञतीर्थ एटा में हीरक जयन्ती समारोह के अवसर पर १७ सितंबर २०२३ से चतुर्वेद पारायण यज्ञ का शुभारम्भ हो रहा है। गुरुकुल की स्थापना १९४८ में स्वामी ब्रह्मानन्द दण्डी जी ने की थी ,उस समय भी चारों वेदों का पारायण यज्ञ किया गया था। स्वामी ब्रह्मानन्द दण्डी जी का जन्म एटा जिले के शाहपुर गाँव में हुआ था, उनकी शिक्षा काशी, मथुरा और साधु आश्रम हरदुआगंज अलीगढ़ में हुई थी। वे वेद और दर्शनों के बड़े विद्वान् थे। ७५ वर्ष पूर्ण होने पर यह आयोजन किया जा रहा है और इसकी पूर्ण आहुति २९ अक्टूबर २३को होगी। २७, २८, २९ अक्टूबर को विशेष समारोह होगा, जिसमें वेद सम्मेलन, संस्कृत एवं संस्कृति सम्मेलन,यज्ञ सम्मेलन,राष्ट्र रक्षा सम्मेलन, कवि सम्मेलन,आर्य महिला सम्मेलन, योग एवं व्यायाम प्रदर्शन, गुरुकुल शिक्षा एवं स्नातक सम्मेलन आदि महत्वपूर्ण अधिवेशन होंगे। यज्ञ में आहुति एवं आर्थिक सहयोग के लिए सर्व समाज से अपील है।

कृष्ण जन्माष्टमी पर्व

दिनांक ८.९.२०२३ दिन-शुक्रवार आर्य समाज चौक प्रतापगढ़ में योगेश्वर श्री कृष्णा जी का जन्मदिन बड़े हर्षो उल्लास के साथ मनाया गया कार्यक्रम में दैनिक यज्ञ उप प्रधान श्री रामेश्वर प्रसाद उमर वैश्य के सानिध्य में संपन्न हुआ यज्ञ के मुख्य यजमान जिला अधिकारी माननीय श्री श्री प्रकाश चंद्र श्रीवास्तव व उनकी पत्नी जी रही यज्ञ ब्रह्मा योग गुरु श्री ओमप्रकाश कसौधन जी रहे जिसे मातृ शक्ति और बच्चों ने कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई। जिसमें प्रधान श्री राम कृपाल कसौधन जी डॉक्टर सत्य प्रकाश गुप्ता जी, राजेश खंडेलवाल जी, कृष्ण लाल पटवा जी ,अतुल गुप्ता जी, अभिषेक बरनवाल, गोपाल जी केशरवानी, शम्मित्र आर्य, सत्यप्रकाश कसौधन, सुनील जायसवाल, दुर्गेश योगी, विजय गुप्ता एडवोकेट, विजय सिंह ट्रांसपोर्टर, अन्य सैकड़ो की संख्या में आर्यजन उपस्थित रहे।

स्वामी–आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक–पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस,
5–मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है–सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।